अंक-19
वर्ष-2025

ISSN No. 2249-9121

उन्मीलन

(शोध और सृजन)

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
भारत की विरासत संस्था
कन्या महाविद्यालय, (स्वायत्तशासी)
जालन्धर।

शीर्ष राज्य और राष्ट्रीय रैंकिंग
डी बी टी, भारत सरकार द्वारा 'स्टार कॉलेज स्टेटस'
भारत सरकार द्वारा 'क्यूरी' और 'फिस्ट' ग्रांट प्राप्त करने वाला प्रथम कॉलेज

Re-accredited
'A' by NAAC-UGC
College with Potential
for Excellence
Status Conferred by UGC

ISSN-2249-9121

उन्मीलन

(शोध और सृजन)

अंक - 19 वर्ष- 2025

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

भारत की विरासत संस्था

कन्या महाविद्यालय (स्वायत्तशासी), जालन्धर।

शीर्ष राज्य और राष्ट्रीय रैंकिंग

डी बी टी, भारत सरकार द्वारा 'स्टार कॉलेज स्टेटस'

भारत सरकार द्वारा 'क्यूरी' और 'फिस्ट' ग्रांट प्राप्त करने वाला प्रथम कॉलेज

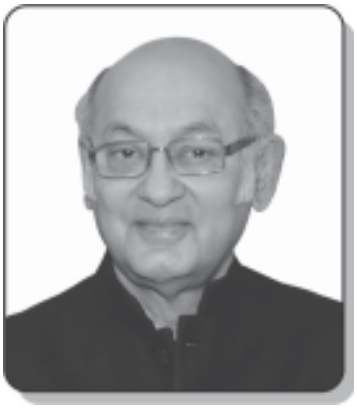

सन्देश

भाषा में असीम शक्ति मौजूद है। भले ही वह कोई भी भाषा हो । हिंदी हमारे विवेक की भाषा है। हम जो भी निर्णय लेते हैं, उसे पहले अपनी भाषा में ही सोचते हैं । भाषा अस्मिता से जुड़ी चीज है और अस्मिता के प्रश्न कभी नहीं मरते । भारत सरकार ने देश में अपने त्रिभाषा फॉर्मूले के अंतर्गत स्कूल जाने वाले बच्चों में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी, उर्दू तथा एक भारतीय भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सरकारी स्कूलों में भाषा शिक्षकों की नियुक्ति के लिए वित्तीय सहायता हेतु योजना आरंभ की है।

हिंदी भाषा की उपयोगिता बड़ी व्यापक है। यह केवल भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति, संस्कारों और राष्ट्रीयता की प्रतीक है । यह भाषा भारत में सामाजिक एकीकरण और संचार को बढ़ावा देती है। यह विविध संस्कृतियों को एकजुट करती है और राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हिंदी साहित्य ज्ञान से परिपूर्ण है और सबसे बड़ी बात यह कि हमारी राजभाषा भी हिंदी है।

इसलिए हिंदी के लिए हमारी प्रतिबद्धता और प्रयासों से हम इसे एक समृद्ध भाषा बना सकते हैं जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक महत्वपूर्ण धरोहर होगी । के एम वी के हिंदी विभाग की मैं सराहना करता हूं कि संघर्ष के इस समय में भी वे डट कर खड़े हैं और शिद्दत से हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित हैं । उन्मीलन : शोध और सृजन के इस अंक पर मैं हिंदी विभाग को बधाई देता हूं।

चन्द्रमोहन

प्रधान

(विद्यालय प्रबंधकर्तृ सभा)

सन्देश

यह अतीव प्रसन्नता की बात है कि उन्मीलन : शोध और सृजन का नया अंक प्रकाशित हो रहा है। अंकों का निरंतर और समय पर प्रकाशन हिंदी विभाग के परिश्रम और उद्यमी योग्यता का प्रमाण है। भाषा हमें साहित्य से जोड़ती है और साहित्य जीवन को समझने की दृष्टि देता है। हिंदी भाषा का इतिहास और परंपरा भी सदियों से चलती आ रही है। हिंदी में सर्वश्रेष्ठ साहित्य की रचना हुई है जिनकी गहराई तक जाने वाले महान व्यक्तित्वों के समक्ष हम नमन करते हैं।

आज कंप्यूटर का युग है। बनी बनाई हर चीज चुटकी बजाते ही उपलब्ध हो जाती है। ऐसे समय में हमारी विशेष तौर पर समीक्षक, आलोचक और संपादक का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि वे शोध पत्रों में लेखक के विचारों को परख कर अपना निर्णय दें। यह शोध और सृजन पत्रिका अपनी मौलिकता और सत्यता के लिए जानी जाती है। मेरा विश्वास है कि उन्मीलन सदा की तरह साहित्य एवं रचनात्मकता के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनाए रखेगी। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ हिंदी विभाग को हार्दिक बधाई।

प्रो. डॉ. अतिमा शर्मा द्विवेदी
(प्राचार्या)

साहित्यिक वैचारिकी

संरक्षक

प्रो. (डॉ.) अतिमा शर्मा द्विवेदी

(प्राचार्या, कन्या महाविद्यालय (स्वायत्तशासी), जालंधर)

परामर्श मण्डल

- श्री चन्द्रमोहन (जालंधर)
- प्रो. सुरेश सेठ (जालंधर)
- प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी (अमृतसर)
- श्रीमती चित्रा मुद्गल (दिल्ली)
- प्रो चमन लाल गुप्त (शिमला)
- डॉ. महेश दिवाकर (मुरादाबाद)
- डॉ. विनोद शाही (गुड़गांव)

मूल्यांकन समिति

- डॉ. पूरनचंद टण्डन (दिल्ली)
- डॉ. हरीश सेठी (दिल्ली)
- डॉ. भवानी सिंह (शिमला)
- डॉ. अशोक सभ्रवाल (चण्डीगढ़)
- डॉ. राजेन्द्र टोकी (खन्ना)
- डॉ. धर्मपाल साहिल (होशियारपुर)
- डॉ. सुनील कुमार (अमृतसर)
- डॉ. वीणा विज उदित (जालंधर)

मुख्य सम्पादक

- डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा

संपादक द्वय

- डॉ. रूपिका शर्मा
- डॉ. अनुशोभा

सम्पादकीय कार्यालय

मुख्य सम्पादक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कन्या महाविद्यालय, विद्यालय मार्ग,
जालंधर- 144004 (पंजाब)
दूरभाष- 094175-22232
ई-मेल पता- vinod_kalra66@yahoo.com
मुखपृष्ठ सज्जा एवं प्रकाशक: नव प्रिंटर्ज एण्ड डिज़ाइनर्ज
UNMEELAN (SHODH AUR SRIJAN)
ISSN- 2249-9121
A Literary yearly Research Journal
Language : Hindi
Published by: Nav Printers & Designers

प्रकाशन संबंधी महत्वपूर्ण निर्देश

- उन्मीलन (शोध और सृजन) परामर्श मण्डल एवं विषय विशेषज्ञों के मार्गदर्शन व दिशा निर्देश से प्रेरित साहित्यिक वैचारिकी की वार्षिक शोध एवं सृजन पत्रिका है। मूल्यांकन- समिति द्वारा पारित शोध-पत्र ही इस पत्रिका में प्रकाशित होंगे।
- अपना शोधालेख (संदर्भ सहित) 2500 से 3000 शब्दों में यूनिकोड फान्ट 13 साइज में भेजें।
- आलेख के साथ अपना नाम, पद, विभाग, संस्था का नाम, मोबाइल नम्बर, ई-मेल आई डी व स्थायी पता अवश्य लिखें।
- रचना की जिम्मेदारी पूर्णतया लेखक की होगी।
- रचना में प्रकाशित लेखक के विचारों के साथ संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।
- सम्पादक के पास रचना-सम्पादन के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।
- अपना आलेख इस ई-मेल पर भेजें – unmeelan.hindi@gmail.com

'उन्मीलन (शोध और सृजन)' वार्षिक वैचारिकी की शोध एवं सृजन पत्रिका है। यह पत्रिका वर्ष 2008 से निरंतर आई एस एस एन नंबर-2249-9121 के साथ प्रकाशित हो रही है। इसके अंतर्गत प्रपत्रों, सृजनात्मक रचनाओं, पुस्तक समीक्षाओं और साक्षात्कार आदि का प्रकाशन किया जाता है। इस शोध पत्रिका को इसी अंक से रेफरीड एवं पीयर रिव्यूड किया जा रहा है। इसमें मूल्यांकन समिति द्वारा पारित शोध पत्र ही प्रकाशित होंगे। 'उन्मीलन (शोध और सृजन)' पत्रिका की संरक्षक कन्या महाविद्यालय की प्राचार्या प्रो. डॉ. अतिमा शर्मा द्विवेदी हैं। इस पत्रिका की मुख्य सम्पादक डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा और सम्पादक द्वय डॉ. रूपिका और डॉ. अनुशोभा है। रचना की मौलिकता की जिम्मेदारी पूर्णतया लेखक की होगी। यदि किसी आलेख में साहित्यिक चोरी पाई जाती है तो उसका ज़िम्मेदार स्वयं लेखक होगा। रचना में प्रकाशित लेखक के विचारों के साथ सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका अनियमितकालीन, अवैतनिक एवं अव्यावसायिक पत्रिका है। प्रेषक के शोध पत्रों अथवा रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।

सम्पादकीय

हिन्दी का आत्मसंघर्ष

भाषा उन सबसे अनमोल उपहारों में से एक है जिन्हें मानव सभ्यता ने सहस्राब्दियों से पोषित किया है। भाषा के माध्यम से ही हम सोचते हैं, याद करते हैं, अभिव्यक्त करते हैं, स्वप्न देखते हैं और अपने आसपास की दुनिया के साथ संवाद करते हैं। यह वह अदृश्य सूत्र है जो व्यक्तियों को समुदायों और सभ्यताओं में बाँधता है।

मैं कन्या महाविद्यालय के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूं जिसने मेरे कृतित्व को हर बार सम्मानित किया। प्रत्येक लेखक का कृतित्व उसकी भाषा, उसके शब्द संसार से अंतरंग रूप से जुड़ा रहता है। यह चीज जहां लेखक को ने कलाकारों से अलग करती है,वह दूसरी ओर उसे एक विशेष प्रकार के कृतज्ञता बोध से भी अवगत कराती है। उस भाषा के प्रति कृतज्ञता बोध, जिससे उसके लेखक का जन्म हुआ है, उसके जीवन का पुनर्जन्म हुआ है। इस दृष्टि से इस संस्था द्वारा मुझे दिया गया सम्मान और भी अधिक गौरवपूर्ण बन जाता है क्योंकि अपने जन्म के साथ ही यह संस्था 'हिंदी' का आराधन करती आ रही है। हिंदी एक ऐसा शब्द है जिसके भीतर मैंने पिछले 42 वर्षों में लेखन की अर्थवत्ता को पाने का प्रयास किया है। मेरे लिए हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि मेरी सांस्कृतिक विरासत की एक अनमोल निधि रही है जिससे मैंने भारतीय होने की पहचान अर्जित की है। वह मेरे लिए केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं अपितु मेरे होने की साक्षी रही है। मैं केवल लेखिका के तौर पर नहीं, हिंदी लेखिका के तौर पर स्वयं को गौरवान्वित पाती हूं।

एक प्रश्न सहज ही मन में उठता है कि हिंदी लेखिका होने का अर्थ क्या है? हम अक्सर भूल जाते हैं कि हिंदी की खड़ी बोली,जिसमे अधिकांश आधुनिक हिंदी साहित्य की रचना हुई है, मुश्किल से 170-175 वर्ष पुरानी है। हिंदी की सांस्कृतिक जड़ें भले ही पांच हजार वर्ष पूर्व संस्कृत वाङ्मय और लोकभाषाओं में हों, खड़ी बोली में रचा साहित्य संभवत: युवातम साहित्य में गिना जाएगा। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तक के लेखकों को अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए अपनी काव्यात्मक भाषा खुद गढ़नी पड़ी थी, बंगला या मराठी लेखकों की तरह उन्हें बनी बनाई विरासत में नहीं मिली थी। आश्चर्य होता है कि इतने कम समय में हिंदी एक साथ इतनी मंजिलें कैसे पार कर लीं। पर मुझे यह सोचकर अत्यंत गर्व होता है कि कैसी विपरीत परिस्थितियों में हिंदी के इन लेखकों ने इन वर्षों मे वैसा संवेदनात्मक तंत्र तैयार किया,जिसमें संस्कृत के शास्त्रीय तंत्र की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण थी,जितनी स्थानीय बोलियों और लोकभाषाओं का योगदान था।

मैं हार्दिक कृतज्ञ हूं उन महानुभावों की जिन्होंने एक ऐसा संरचनात्मक ढांचा तैयार किया जिसमें आधुनिक अनुभवों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की जा सकती है, जिसमें वे अपनी कविता कहानियां लिखते हैं। पर यह सोचकर दुख होता है कि जो भाषा पहले भारत की स्वाधीन चेतना का प्रतिनिधित्व करती थी, स्वतंत्रता के 78 वर्षों बाद भी स्वयं को हीन भावना से ग्रस्त और उपेक्षित पाती है।

कोई भी भाषा अधिक देर तक सरकारी अनुदानों या मौखिक आत्मप्रशंसाओं के दम पर जीवित नहीं रहती। उसकी संजीवनी शक्ति का स्रोत अतल गहराइयों से आता है जहां उसके समाज के संस्कार और स्मृतियां वास करती हैं। भारतेंदु युग से लेकर आज तक हिंदी साहित्य में जितने भी मोड़ आए हैं। इसमें संदेह नहीं कि उनमें लेखकों की निर्णायक भूमिका रही है। उन्होंने अपने लेखन कर्म को आत्मसंघर्ष से जोड़ा है। उन्होंने हिंदी भाषा को सृजनशील, प्रखर और लचीला बनाया है। हिंदी भाषा का विकास बंद दरवाजों के भीतर नहीं, खुली हवा के थपेड़ों के बीच हुआ है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी भाषा ने बहुत गौरवशाली भूमिका निभाई थी कारण, गांधी जी के भारतीय चेतना का स्वदेशी प्रतीक खादी थी और और दूसरी प्रतीक हिंदी भाषा थी। यदि हिंदी ने राष्ट्रभाषा बनने का अधिकार और गौरव अर्जित किया है तो किसी राजकीय प्रभुत्व या संरक्षण के कारण नहीं अपितु अपने खुले और उदार हृदय के कारण किया है जिसकी हर धड़कन में हर भारतीय का छोटे से छोटा अनुभव स्पंदित होता है।। गत अनेक वर्षों से हिंदी का सनातन स्रोत धीरे धीरे सूखता चला गया है। शायद इसी कारण, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, हमारी शिक्षण

पद्धति, हमारे सामाजिक कार्यकलाप में हिंदी की भूमिका हाशिए पर चली गई है। अब प्रतीत होता है कि पराधीन भारत में हमारी चेतना अधिक स्वतंत्र थी, अपनी भाषा में हमारा विश्वास अधिक गहरा था, हमारी सांस्कृतिक संस्थाएं अधिक आत्मनिर्भर थीं। हमें अपनी साहित्यिक पत्रिकाएं चलाने के लिए व्यवसाय घरों या संस्कृति मंत्रालयों के आगे हाथ नहीं फैलाने पड़ते थे। अनेक वर्षों से विदेशी भाषा अंग्रेजी का हमारे देश पर, हमारी शिक्षा पद्धति पर प्रभुत्व जमाने का प्रयास जोरों पर है। तो अब यह दायित्व हमारी सांस्कृतिक संस्थाओं पर आ पड़ता है जो अपनी सोच और चिंतन में स्वावलंबी, शब्द की गरिमा और शक्ति के प्रति आश्वस्त और हिंदी की धरोहर के प्रति सचेत है।

मैं सभी विद्वानों और रचनात्मक प्रहरियों के प्रति नतमस्तक हूं क्योंकि यह साहित्यिक पत्रिका उन्हीं के लेखन सहयोग से निरंतर अग्रसर हो रही है।

- विनोद कालरा
अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग।

अनुक्रम

संदेश 2

श्री चन्द्रमोहन

संदेश 3

प्रो. (डॉ.) अतिमा शर्मा द्विवेदी

संपादकीय

हिन्दी का आत्मसंघर्ष

डॉ. (श्रीमती) विनोद कालरा

शोधालेख

हिमाचल के लोकगीतों में देशभक्ति 9

डॉ. भवानी सिंह

कबीर : मानवीय एकता के विधायक 17

डॉ. सरबजीत कौर राय

गुरु नानक वाणी में नैतिकता का संकल्प 20

डॉ. अमरदीप देओल

पापी पेट की महामारी का तमाशा स्वदेश दीपक की कहानियों में हाशिए का स्वर 22

अभिजीत सिंह तोमर-प्रो. डॉ. सुनील

उषा प्रियम्वदा की कहानियों में मध्यवर्गीय बोध 26

डॉ. लवलीन कौर

श्याम नारायण पाण्डेय के काव्य में स्वातंत्र्य अनुराग 29

डॉ. हेतराम भार्गव

मध्यकालीन भारत के गुजराती संत साहित्य का अनुशीलन 34

डॉ. हरिराम भार्गव

वेदकालीन धर्म एवं समाज का स्वरुप 37

डॉ. दीपलता

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में संजीव का उपन्यास - मुझे पहचानो 42

शशि कुमारी (शोधार्थी)

आलेख

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में काव्य एवं नाटककला का समन्वय 45

डॉ. धर्मपाल साहिल

आस्था का संगम स्थल त्रिलोकनाथ मंदिर 48

शेर सिंह

कविता

खिड़की के बाहर दिखती पहाड़ी 51

बंधुवर अवधेश सिंह

युद्ध 52
प्रो. सीमा जैन
फिर से तुम 53
डॉ. कुलविंदर कौर
गिरह 54
डॉ. कुलविंदर कौर
बांसुरी की धुन 55
डॉ. ज्योति खन्ना
यधार्थ से दूर 56
डॉ. कुसुम डोगरा
रिश्तों की गरमाहट 56
डॉ. कुसुम डोगरा
कुछ दिनों पहले 57
श्रीमती शर्मिला नाकरा

कहानी

दूध 58
श्रीमती चित्रा मुद्गल
थोड़ी सी छांव 59
डॉ. कमलेश भारतीय
पंछी का रुदन 62
डॉ. वीणा विज उदित
स्वाभिमान की ठोकर 66
डॉ. संजीव कुमार

साक्षात्कार

लघुकथा लेखन के अविश्रांत पथिक कमलेश भारतीय 70
नेतराम भारती

व्यंग्य

छाती पीट प्रदर्शन 73
प्रो. श्यामलाल कौशल

पुस्तक समीक्षा

जीवन का यथार्थ दस्तावेज : जूठन 75
डॉ. नरेश कुमार
'मैं रामवंशी हूं' 80
डॉ. रूपिका शर्मा

शोधालेख

हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में देशभक्ति

-डॉ. भवानी सिंह

देशभक्ति एक ऐसी पवित्र भावना है जिसने मनुष्य को स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि परमार्थ के लिए प्रेरित किया। इस भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति केवल अपने लिए नहीं जीता, वह देश और उसके निवासियों के कल्याण के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहता है। इतिहास में ऐसे असंख्य उदाहरण मिलेंगे, जब मनुष्य ने अपने देश की स्वतन्त्रता, अखण्डता, मान, आदर, एकता और पवित्रता के लिए अपने शौर्य और बलिदान का परिचय दिया है। इतिहास में समय और परिस्थितियों के फलस्वरूप देश और देशभक्ति की परिभाषा बदलती रही है। कभी यह ग्राम स्वराज का रूप धारण करती रही और कभी नगर - राज्य का रूप धारण किया। ऐतिहासिक घटनाओं के कारण भारत की सीमाएँ इतिहास के थपेड़ों औरहमारी अपनी कमजोरियों के कारण बदलती, बिगड़ती और बचती रही हैं।

हिमाचल प्रदेश अपनी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा नैसर्गिक कला धरोहर की दृष्टि से दिव्यभूमि है। लोकजीवन की प्रमुख विधा लोकगीत यथा 'नाटी' हेतु यह प्रदेश भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। हिमाचल की बर्फीली चोटियाँ, प्राचीन नाटियाँ, लोकदेवता, लोकगीत, लोकगाथाएं और धार्मिक मान्यताएं यहाँ की सांस्कृतिक विरासत के जीवन्त उदाहरण हैं। ग्राम देवी - देवता के रूप में वैदिक काल के ऋषि-मुनि, विपाषा, शतद्रु, इरावती, चन्द्रभागा, यमुना, तमसा आदि नदियाँ, मनोहर दृश्यभूमियाँ इस क्षेत्र को मानव जाति के आकर्षण का केन्द्र बनाती हैं। जिसका सम्पूर्ण विवरण यहाँ के लोकगीत एवं लोकगाथाओं अनवरत मिलता है। देशभक्ति की भावना हिमाचल में आदिकाल से प्रचलित है। जब- जब देश की सुरक्षा पर संकट के बादल छाये हैं तो यहाँ के शूरवीरों ने शौर्य और पराक्रम से अपने प्राणों की आहुति देकर देश की सुरक्षा के लिए अपनी शहादतें दी हैं। ये शूरवीर शहीद होकर हिमाचली लोकगीतों में अमर हो गए। जिनका स्पष्ट चित्रण यहाँ के लोकगीतों में मिलता है और लोक कवियों एवं लोक गायकों ने इनको संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वतन्त्रता से पहले भारत छोटी-बड़ी रियासतों में बंटा था। इसलिए उस समय के लोकमानस पर देश की कल्पना में भौगोलिक और राजनैतिक सीमा से बढ़कर देश की माटी की गंध अपरोक्ष रूप से उभरती रही है। लोकगीतों में देशभक्ति का जो गीत उभरा, उसमें गांव-गांव की माटी की गंध महिमा, राजनैतिक सीमाओं, राजाओं जातीय वीरों और पौराणिक वीरों के लोकगीत मानस पटल पर सहसा थिरक उठे और लोकजीवन को आनन्दित और प्रेरित करते रहे। इनमें से बहुत से लोकगीत पुराने होते हुए भी एकदम नए लगते हैं। यह इन लोकगीतों के स्थायी महत्त्व की दलील है। यदि वे अपने युग के सामयिक चित्र मात्र होते, तो न वे चिरकाल तक जीवित रह सकते और न वे अनेक पीढ़ियों के पश्चात् आज भी हमें नए से लगते। गांव वालों के रहन-सहन और सोचने के ढंग, सामन्तशाही सामाजिक व्यवस्था का दबदबा और उसके विरुद्ध उठती हुई प्रतिरोध की आवाज यह सब लोकगीत की बदलती हुई परम्परा का प्रतीक है। प्रत्येक उत्सव और त्यौहार अपने गीत साथ लाता है और इसके ताने-बाने में विविध जन समुदायों की भावनाएं अंकित रहती हैं। हिमाचली लोकगीत से स्थानीय बानगी और स्थानीय माटी की महिमा कैसी सुन्दरता से उभरी है, इसका विस्तृत विवरण निम्नवत है :

लोककला में दरबारी कला की-सी बारीकियां नहीं रहतीं। जनशक्ति की सफल अभिव्यक्ति ही लोककला की परम्परा रही है और यही बात हम लोक गीतों का अध्ययन करते समय अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है, जैसे प्रत्येक पीढ़ी की भावनाएं समय-समय पर पुराने लोकगीतों में निहित होती चली गई हैं :

मेरीआ गौरती भाटिआ लो, सदा करूं बन्दगे तेरे,
मेरा बसि मनादे लो, हुए रौहे जीवादे मेरे।
भारत री माटीआ लो, तू ओने म्हारो ठाणों,
जानी का मारे गौरते लो, तखा म्हारो लो प्राणा।
जलमा गे माटीआ लो, माथो टेकू तांका हऊं ,
ज्ञाना शीखू कृष्णा रो, कामा रामा रो लो हऊं।
कैती बदला जुगा लो, केती बदला घत्री राजा,
बदा तेरा छोरू था, वदा था तेरे प्रजा।

हिबपति शिखरा हुंदी लो, कालो समुदरा पाणी,
सिधुवाले झेलमा लो, कृष्ण आमा ब्रह्मपुत्र जाणी।
जैई तौई जिन्दड़े लो, तेई जऊं थक ठाणा,
लोहू देऊ आपणो लो, थऊ लो मारी माना।

प्रिय जन्मभूमि मैं सदा तुम्हें प्रणाम करता हूं। मेरे मन-प्राणों में तुम बसी हो। भारत माता तूही हमारी शोभा है। जान से प्यारी मां, हम अपने प्राण तुम पर न्योछावर कर देंगे! हे जन्मभूमि, मैं नतमस्तक होकर तुमसे यही मांगता हूं कि श्रीकृष्ण की गीता के उपदेश और श्रीराम की मर्यादा को जीवन में उतार सकूं।। मां ! युग बदले, राजे बदले। सभी तेरे बेटे थे। कैलाश तेरा मुकुट है और चरणों में नीला समुद्र लहराता है। पूर्व और पश्चिम में झेलम और सिन्धु और पूर्व में ब्रह्मपुत्र तुम्हें बहलाता है। हे मां! जब तक जीवन है, तेरी कीर्ति बनाए रखूंगा, चाहे उसके लिए मुझे अपना जीवनबलिदान ही क्यों न करना पड़े।

प्रस्तुत लोकगीत में कितना सुन्दर चित्रण हुआ है पुण्यभूमि भारत का। जनमानस पर जातीय वीरों की वीरगाथाएँ ही समय-समय पर वीरता का संचार करती है। ऐसी वीर गाथायें श्रुति और स्मृति के सहारे सैकड़ों वर्षों से जनपदीय संस्कृति की अमर थाती बन गई हैं, जिन्हें आज भी लोग बड़ी श्रद्धा से गाते हैं और बड़े चाव से सुनते हैं। इन्हीं असंख्य लोकगीतों में से एक की झलक देखिए : मुगलों का राज्य समाप्त हुआ, अंग्रेज भारत में आए। हिमाचल प्रदेश में उनके अत्याचारों के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए। आजादी से पहले जिला शिमला की तहसील रामपुर बुशहर एक रियासत थी इस रियासत में हुकुमत हेतु अंग्रेज वन अधिकारी गिबसन की नियुक्ति की और इसके अत्याचार से जब यहाँ लोग प्रभावित हुए तो उसके साथ लड़ाई करने का निर्णय लिया। प्रस्तुत लोकगीत में रामपुर बुशहर में नियुक्त एक अंग्रेज वन अधिकारी गिबसन के अत्याचार से तंग आकर उसे मारने के लिए लड़ाई का जिक्र मिलता है :

घारौ तौ गाई कशौठो गाई नाउरी रै नालि रै,
टिकरौ गाई मा पौहिले, गाई कुपड़ी रि कालि रे।
माटौरी मैरी मांटणे तू ओरि खै न बोले रे,
झांगणो म्हारे गिवसणी बौलो ढाकडू र ओलि रे।
ऐट गै मेरिये नालटीये तू बड़े कमागै रे,
छाड़ै थिये गिबसनो खि कुतियो दे लागि रे।
बिसौ बोलौ साहिबो री मौरी ली राडि रे,
कुत्ती री ताई तिनै पापीये दुनिया दि भांडि रे।

प्रस्तुत लोकगीत में गिबसन के साथ स्थानीय लोगों की लड़ाई के दृश्य को लेकर लोककवि का कहना है कि कुछ लोगों ने वन अधिकारी गिबसन को मार देने का षड्यंत्र बनाया। जिस घर में उन्होंने षड्यंत्र बनाया, उसकी घरवाली से आग्रह किया कि यह बात किसी पर प्रकट न करें। गिबसन को एक पहाड़ी की ओट से हमने गोली मार देनी है। पर दुर्भाग्य से वह गोली उसको नहीं उसकी कुतिया पर लगी। षड्यंत्रकारी पकड़े गए। निर्दयी गिबसन ने एक कुतिया को मारने के लिए सब लोगों को बदनाम किया।

दूसरे महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारत की रियासत के राजाओं को आदेश दिए थे कि वह अपनी-अपने क्षेत्र से दूसरे विश्व युद्ध की की लड़ाई हेतु तत्कालीन भारतीय सेना में जबरदस्ती युवाओं को भर्ती करवाएं। हिमाचल प्रदेश के रामपुर रियासित से सैकड़ों युवाओं को जबदस्ती सेना में भर्ती किया। लड़ाई में देश की ओर से जो युवक सेना में भर्ती हुए और उनमें से कुछ वीरगति को प्राप्त हुए उनका मनोहर वर्णन लोककवि ने इस गीत में किया है:

लिखयो री कागली गोई देवरी कि आए,
ठाकर देई मौषचन्दै बांचणी लाए।
इस आजी कागली दी फारशी ग्रेजी,
नवै नवै छौकरे ऊटे भरती खि बैदी।
सड़की र शाकरे खूबौ नौटी र बालु,
औरै आणी बौदियौ शिलू लांवगी परालु,
सारी गौई पब्लिक खाणे म्हारे खि होए।
कैली जानि र मामले डैवंदा न कोए,

बैटा दैयो कौले रा सैमी आपणो नांव,
भरती खि राजीआ ऐरेडेऊला आंव।
जैमी कौरै पढ्या भाईया ऐतनौ कामौ,
शौ दैऊ, रुपये रौ साथी घमदर नामौ।
आच्छा ढबौ पढ् या भाईया छेई के छता,
बाप मैरे कौल खि लाए मी न पता।
बापौ दैओला कौला तेरा हलकिय राड़ौ,
कजा मेरा बाहुआ जो जबरीय छाड़ौ।
जबरीय न छाड़दा दाड़ा दैवरी रा राणा,
भरती खि बापुआ मेरै शौकीरा जाणा।
जटौरा कहानु मैरी बहणा सुखी,
का लागी पर्दैया माईया भरती री दुखी।
मां रुणौली पर्दया तेरी घुगती गुणै साथी,
संगी खि पदैया बीया तईय न कुनै भूशी।
लाये ला पर्दया भाईया अकली री बातौ,
शिव राम समारठु चालो कानिया भाटौ।

जब अंग्रेजों को सन् 1914-19 के विश्व युद्ध के लिए सैनिकों की कमी पड़ी तो उन्होंने भारत की रियासतों के राजाओं को इसके बारे में सन्देश दिया कि वह अपनी रियासत से नौजवान लड़कों को सेना में भर्ती करवाएं उसी की एक कापी (कोटखाई) खनैटी रियासत राणा अमीरचन्द के पास पहुंची उसने अपनी सारी प्रजा को इकट्ठा करके यह सन्देश सुनाया। सारी प्रजा चुप रही केवल एक नौजवान बीर पद्म सिंह इस कार्य को पूरा करने के लिए उठा और कहा कि सेना में भरती होने के लिए मैं जाऊंगा। राजा ने उसको 100 रुपया दिया और इनाम के तौर पर उसको घमदर नाम की जमीन का बहुत बड़ा टुकड़ा दिया। उसके मां-बाप की पदम सिंहअकेली संतान थी फिर भी वह अपनी वीरता का परिचय दिखाने के लिए सेना में भरते हुआ और विदेशों में जाकर अपनी वीरता का परिचय दिया उसकी स्मृति में आज भी हिमाचल में यह गीता गया जाता है-

महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई भी लड़ी गई उसकी छाप वहां के दूरस्थ ग्रामों के ऊपर भी पड़ी। गांधी जी को भावभीनी श्रद्धांजलि इस लोकगीत द्वारा दी गई है-

म्हारे देशो र महात्मा गांधिया, तू चिया बड़ा सैणा रे,
ऐनक, घड़ी, धोती लाएम, एस देणी रा बाबा बणा रे।
चाला सचाई गाणे उमीर भरी, जूठ कवि न बोला र,
राने हरि चन्दर राही तू. जाणु अवतार होला रे।
म्हारा देश अंगरेजो द, केश करिए था छड़ाया रे,
भूखा रौजा और जेलां दा डेवा, तुई सुख न पाया रे।
भगाए देशों द गोरे आदमी, देश त आजाद कराया रे
बापणे राज आफी करी एबे, काम एरा बताया है,
जाति पाति रा भेद मठाबा, सबै एक बणावे रे।
हरिजन म्हारे सके भाईअ, एजै सन्देशे शणावे रे।
नांव राखा तुई दुनिएं दा। सबी रा बापू रे,
जबै आवली याद तेरी हामै रोऊंमे आपू रे।

महात्मा गांधी जी ! आप हमारे राष्ट्र में एक प्रखर प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। ऐनक, घड़ी, धोती पहनते हुए आप इस राष्ट्र पिता थे। आपने समस्त जीवन भर सत्य का आश्रय लिया एवं असत्य को तिलांजलि दी। हम सोचते हैं कि सम्भवतः आप सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के रूप में पुनः अवतरित हुए होंगे। हमारा राष्ट्र फिरंगियों से किस प्रकार मुक्त करवाया। आपने उपवास रखे एवं जेलों की कठोर यातनाएं झेलीं। आपका जीवन संघर्षमय रहा। अंग्रेजों को इस देश से खदेड़कर राष्ट्र स्वतंत्र करवाया। स्वराज्य की नींव डाली एवं

स्वराज्य करना सिखाया। अस्पृश्यता का उन्मूलन किया तथा हमें एकता के सूत्र में पिरोया। हरिजन हमारे भाई है, इस संदेश को जनगण में फूंक दिया। आप बापू के नाम से विश्व भर में पुकारे जाते हैं। जब कभी आपकी याद आएगी, हम याद में स्वयं अश्रु बहाया करेंगे। गांधी जी ने आजादी के लिए संघर्ष के साथ-साथ सर्वोदय, समाज सुधार, निर्माण कार्य और शिक्षा प्रसार पर अधिक बल दिया, इसका सरल और प्रभावशाली वर्णन इस लोकगीत द्वारा उभरा है-

ऊंचे ऊंचे टिब्बै होले लो ऊंची ऊंची धारा,
स्याणा बोलो पदमुआ लो कोरी ला गांवो सुधारा
पहाडी रे बासा दे होवो देखणे कि नजारा
हुंदी उबी फूलिटू फूले ऐसा साजना मुलकी हमारा
स्याणा बोलो पदमुआ...
गांवां दे केती केती मौरा ला पाणिये नि चीशा
कुलो आड़णी आणी कूलो नाजे घोरा पीशा।
स्याना बोलो पदमुबा ...
भोले बबले वे लोका, अनपढ़ा लो सारे
नव्वै नव्वै स्कूल लो खोल एजी वे अरजा म्हारे।
स्याणा बोलो पदमुआ...
छोटड़े छोटड़े घोरा ला होन्दे जाणी ली डेरे
गांव दे होई लोणे वे दूरी बड़े बड़े ला फेरे
स्याणा बोलो... गोली तुंगो दी सबै ठांबो री सफाई
पहाड़ोरा बासा ठांवों देवता री मुल्काई
स्हाणा बोलो पदमुआ लो कोरी ला गांवो सुधारा।

देश में होने वाली प्रगति का उल्लेख हिमाचल के लोकगीतों में भी मिलता है। देश की प्रगति देखकर गीतकार के हृदय से प्रसिद्ध जनसेवक पदमू के लिए भाव प्रस्फुटित हुए हैं। जिसे सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि-

इन चारों ओर फैले पहाड़ों ऊंचे-ऊंचे शिखरों पर हमारे गांव हैं। आओ इन गांवों का सुधार करें। पहाड़ के नजारे देखने योग्य हैं। जिस प्रकार इधर-उधर फूल खिल रहे हैं उसी तरह हमारे गाँव भी सुंदर होने चाहिए कहीं-कहीं अभी भी पीने के पानी की कमी है। इसलिए कोई हल निकालें ताकि अनाज अधिक पैदा हो और घराट में घर बैठे ही पिस जाये। हमारे पहाड़ के लोग बड़े भोले, सादे और अनपढ़ हैं, अन्य गाँव की तरह इस गाँव में भी स्कूल खोलें। अपने गाँव के छोटे-छोटे घरों को बड़ा और अच्छा करें, गली बरामदे की सफाई करें। आओ अपने इस गाँव को देवता का पवित्र स्थान बनाकर देवलोक बनायें।

वर्तमान हिमाचली लोकगीतों में केवल भारत के पर्वतीय क्षेत्र हिमाचल प्रदेश की ही प्रशंसा हुई हो, ऐसी बात नहीं। देशभक्तों की प्रशंसा में भी लोककवि की वाणी मुखर हुई है। श्री जवाहर लाल नेहरू का इस लोकगीत द्वारा प्रभावशाली चित्र खींचा गया है-

हाथ की नेहरूआ घोड़े री लगामों
देशो मेरे भाइयो औसो गुलामो
घोड़ा जानि नेहरू रा बागुरी दा खेलौ
सुभाषौ, कृपलानी चाला शेरो पटैलो
सौरि दिति बौइणिय रोखड़ी बाहनी
हुकमौ शुणे गांधी रो रेजो रो न मानी
तौंग जाणी मोहलो रे फीरे ला फेरे
कामो जाणी काखड़े ए केरियो न मेरे
बौइतों तेरी लछमी निकलो ली तौंग
आंवी मेरे भाइया आजू ली सोंग
बाशे मेरे कुखडुआ डौरे लो कई ?
सारो लागो टाबरा आ देशौ री तौई।

सरलार्थ – नेहरू ने प्राचीन देश को स्वतन्त्र करने की बात ठानी। उनके साथ सुभाषचन्द्र बोस, आचार्य कृपलानी और सरदार पटेल सरीखे नेता भी स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। नेहरू जी के साथ उनकी बहन विजय लक्ष्मी भी इस संघर्ष में शामिल हुई। सारा नेहरू परिवार ही जवाहर लाल के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने लगा।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का जिक्र भी लोककवि ने अवश्य किया है। भारतीय गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति बन जाने के बाद वे जब पहली बार हिमाचल पंचायत सम्मेलन का उद्घाटन करने शिमला आए तो उनका स्वागत इन शब्दों में किया गया–

चैन आज के देसी री हुई पंचायती रा मेलौ,
राष्ट्रपति र हुए दर्शणों मनोरंजनों खेलौ।
बाबू राजिन्द्रा तेरी कौरी का रीशौ,
तुहें आजे शीमले हामें मानी बड़ी खीशो।
बापू हुआ म्हारे देशोदा ऋषिमुनि रा औतारौ,
सारी किया जिदगी दा तौ देशो रा सुधारौ।
बापू री चेही शीखौ देसभी चालने आहो,
प्रेमी आसौ बोलौ शान्ति रा रामौ राजा नांव।
आज अमौ सारे भारती दो पंचायती राजौ,
सौचे जीवै कौरी मेम्बरी खोटे कामौदे भाजौ।

आज का दिन अति शुभ है कि आज यहां पंचायत सम्मेलन हो रहा है जिसमें मनोरंजन के वातावरण में राष्ट्रपति के शुभ दर्शन डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के हमारे मध्य में सम्मिलित होने से हम इतने प्रसन्न हैं कि जिसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। सौभाग्य से हमारे देश में बापू का ऋषि-मुनियों की भांति जन्म हुआ और अपना जीवन देश की सेवा में अर्पण किया। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम बापू के आदेश का पालन करते हुए देश में प्रेम और शान्ति का राम राज्य स्थापित करें। आज जबकि सारे भारत में पंचायत राज्य स्थापित हो चुका है तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम बुराइयों से बचते हुए सच्चे भाव से देश की सेवा करें इसी प्रकार इस अवसर पर देश में हो रही प्रगति का वर्णन भी लोककवि ने सशक्त शब्दों में किया है :

फूले फौले मुलका योजने रे जोरे,
देई टाले महात्मे देशौ दौ गोरै।
जग खुले जग दै कालजौ स्कूलौ,
विदेशी आजौ पाउणा देखिय भूलौ।
चैन बापू आतेरा दूर ख्याल,
राजौ किया सामने खि जवाहर लालौ।

हमारी प्रार्थना है कि भारतवर्ष पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप खूब फले फूले क्योंकि महात्मा गांधी जी की कृपा से बड़ी कठिनाइयों से गुलामी की बेड़ियां टूटीं। आजादी के बाद भारतवर्ष में जगह-जगह स्कूल और कॉलेज खुले जिनको देखकर विदेशी सराहना किए बगैर नहीं रह सकते। हम गांधी जी की दूरअन्देशी के लिए धन्यवाद करते हैं जिन्होंने भारत के राज शासन का भार भारत के सपूत वीर जवाहर लाल के हाथ सौंपा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष हो या स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए भारत की उत्तरी सीमा पर युद्ध हो रहा हो। लोककवि कैसे आंख बन्द कर सकता है। 1961-62 का भारत पर चीनी आक्रमण भारत के इतिहास की वह घड़ी है जिसमें उसके आत्म-सम्मान को चुनौती दी गई थी। ऐसे समय में देश का कोई भी व्यक्ति मौन साध कर तमाशा नहीं देख सकता था। भारत के लोगों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और एक होकर शत्रुओं को उनकी धृष्टता की सजा दी। इस पर लोककवि ने देश की जनता को इन पंक्तियों द्वारा आह्वान किया–

खोआ चैई न बौरी पापिये मुलखो रा ठाणों,
ऊबै चुंगी खोखरी खाण्डै घणुओ रा बाणों।
देशे पोड़ा महात्मे गांधी र बौरी री डोरी,
नोंघीओ धंणी छोटहू म्हारे इजती र धौरौ।
बचर्ण र घरमी बादै झर्ण के बखाणो,

लोआ चैई न बौरी पापिए मुलखा रा ठाणो।
ऊबै चूगो खोखरी खाण्डं घणुओं रा बाणो,
गांग पौड़ी जमनै गारी बौरी री छोई घनौ।
भेजो दिल्ली के सोने चांदियों र चाणों,
खोआ चैई न बौरी पापिये मुलखौ रा ठाणों,
ऊबै चूंगौ खोखरी - खण्डै घणुओं रै बाणो।

भाइयो सावधान हो जाओ, कहीं ऐसा न हो कि पापी तथा बर्बर शत्रु मेरी स्नेहमयी मातृभूमि के प्रतिष्ठित सौन्दर्य को नष्ट कर डलां। इसलिए उठो और जैसे भी बने शत्रुओं का संहार करने को निकल पड़ो। आज मातृभूमि को तुम्हारी परम्परागत वीरता की आवश्यकता है। क्योंकि आज महात्मा गांधी के महान देश पर शत्रुओं का आतंक छा गया है। हमारी बहनों, बेटियों, बालकों तथा सम्मानित घरानों की मान मर्यादा खतरे में पड़ गई है। इसलिए सब लोग मिलकर निकल पड़ो और सभी को बचाव के तरीके समझाओ।

शव के कैलाश सरीखे हिमालय के पवित्र शिखर तथा अन्य पावन तीर्थ स्थान तुम्हारी ओर आंख लगाए हुए है। क्योंकि गंगा और यमुना के पावन जल पर शत्रुओं की अपवित्र छाया मंडरा रही है। इसलिए इन सब की रक्षा के लिए दिल खोलकर धन भेजो और सोने तथा चांदी के आभूषण दिल्ली को भेज दो। शत्रुओं से लोहा लेने को तैयार हो जाओ ताकि ये पापी तथा बर्बर मातृभूमि की मान मर्यादा को नष्ट न कर सकें। अत: न जाने ऐसे ही कितने वीरता और देशभक्ति से भरे लोकगीत इस पहाड़ी धरती पर उभरे और लोकमानस को झंझोड़ गये। इन लोकगीतों में देश की एकता, अखण्डता और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए लोक कवि ने अपनी सरल शैली में गहरी बात कह दी है।

पाकिस्तान और चीन के साथ युद्ध में न जाने कितने असंख्य वीर भारत मां की आन और शान के लिए युद्धभूमि में शहीद हो गए। उन असंख्य लोकगीतों में एक वीर सुरतराम के बलिदान पर लोककवि के कंठ से मुखर हुआ है-

सेजा गाई मौरदौ जू रौणं दा पौडौ,
गाई सेजे छेउड़े ज मैहस्ते जौलो।
वीर मौरद सूरतराम देइलै गाये,
समाणा जू रौर्णदा नेक नामे पाये।
गाई आम सूरतराम जू रोणं दा पौड़ा,
बोरी साथी रौणंदा जू डौटियो लाडैजा।
वीर मोरद सूरतराम जू रोर्ण दा पौडौ,
पाकिस्तान बोरी तू जू चोंगा न डौरा।
दादे एसरे अचलू हीरे गोरखिये थिये गाडै,
शिमले र पहाडै दें म्हारे जु एक नाई पौहड़े।
जागीर मिले तोई मामले मार्फ खानदान खी त्हारै,
मांगी कटियो गोरखिये आछे कोरे ज घरै।
बोरे रामे पाकिस्तान दुजा चायना मिला,
घोखाबाज चायना बौड़ा जू ताइ हिला था।
शेर मोरदै सूरतदाम छाड़ौ बाद री नांबी,
देश मुल्क पौरजा तौई बाद गौड़े नांओ।
छोड़ो भारतै शिमलै ऐ हिमाचले ऐ नाओं,
नानो छाड़ो तौई तेगटा ऐ, करासा नगरी गाओं।
जुड़े थे मेरई बोदे दुई जू निकियो पाँ गाउँ ,
भारत री सिन्गे है जू बाल भर नछाड़ों।
दोखा दिणा मेरे पाकिस्ताने तौई चायना बोड़ा,
शेर बबर भारत म्हारा जू नाई इन दा औड़ा।
शेखी मारी थी पाकिस्तान जू हराइयो,
पौछाड़ा भारत री सिन्गे है जू बाल भर न छाडै,
म्हारा भारत बोरी साथी सब डौटियो लौड़ा,
बीर मेरा पाकिस्तान ऐवै हारियो पौड़ा।

उस मर्द की बहादुरी का गीत गाया जाता है जो जंग में जान त्याग देता है या तो मुल्क की खातिर जंग में बलिदान होता है और औरत का वह गीत गाया जाता है जो पतिव्रता हो और अपने पति के साथ ही अग्नि संस्कार के मौके पर जलकर सती हो जाती है। बहादुर श्री सूरतराम जिसने रणक्षेत्र में कुर्बानी दी उसको गाया जाएगा। हम श्री सूरतराम को गायेंगे जो दुश्मन के साथ मैदाने जंग में लड़ते-लड़ते नहीं थका और जिसने डटकर लड़ाई की। वीर सूरतराम मैदाने जंग में दुश्मन पाकिस्तान से बिल्कुल नहीं डरा। गोरखा युद्ध में सूरतराम के पूर्वजों ने गोरखों से ऐसा ही युद्ध किया था। गोरखों को मार भगाने के लिए पुरस्कार स्वरूप राजा बुशहर ने उन्हें जागीर भी प्रदान की थी। पाकिस्तान और चीन दोनों भारत के शत्रु है। इनसे युद्ध कर सूरतराम जैसे वीर ने देश

और अपने गांव का नाम रखा। भारत के वीरों के सामने दोनों शत्रुओं की एक न चली। पाकिस्तान का सारा घमंड भारतीय वीर ने चकनाचूर कर दिया।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि ऐसे अनेक लोकगीत गांव की पृष्ठभूमि पर उभरते हैं, जिनकी चित्र सुलभ सूक्ष्म रेखाएं मन पर एक जादू-सा प्रभाव कर लेती हैं। पर अब जीवन की गति बदल रही है। अब तक भारत के अन्य ग्रामों की तरह हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय गांवों में भी दुनिया से अलग-थलग भाग्यचक्र से विश्वास करता हुआ दब कर जीवन व्यतीत करता रहा था। अब नई राजनीतिक परिस्थितयों के अनुसार सामाजिक पृष्ठभूमि भी बदल रही है और लोककवियों की रचनात्मक शक्तियां इसे प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगी है। पर अब जो लोकसाहित्य जन्म लेगा उसका अस्तित्व सामयिक न होगा जैसा कि पुरानी परम्पराओं का तकाजा है।

आज का लोककवि शिक्षा और संचार और वैज्ञानिक साधनों से प्रभावित है। उसके लिए अब गांव और प्रदेश ही नहीं रहा बल्कि इस सारे भारत खंड को ही अपनी जन्म भूमि समझता है। इसलिए इसके उत्थान, एकता, स्वतन्त्रता और शक्तिशाली बनने की कामना करता है। ऐसे अनेक लोकगीत अब धीरे-धीरे जनजीवन में उभरने लगे है। इनमें कूट-कूटकर समाज सुधार और देशभक्ति

की भावना भरी है। देखिए इस हिमाचली लोकगीत का बांकपन-

मिलयौ करो भाइया देशौ री सेवा,
म्हारी कौरो मौदिद नारणौ देवा,
पौहले सभी साथैरी मित्रताई जौड़ौ,
जैजा आजौ बढ़ियौ तेसरे दांदडू चोडो।
बुरी हुओं भाइयो आपू भांजिबी फूटौ,
घर फूटौ अपणो बौरी मिलौ लूटौ,
हिन्दु मां मुसलै सिख या इसाइ,
बेट बादे भारतौ रे भारतो सभी री भाई।
आपू माजे भाइयो एरा कौरी एका,
जैजा आजो चौडियौ तेसरा जालादेखा।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम सब संगठित होकर देश की सेवा करें और हमें पूर्ण विश्वास है कि इसमें भगवान हमारी अवश्य सहायता करेंगे। हमें चाहिए कि हम अपने पड़ोसियों की तरफ मित्रता का हाथ बढ़ायें। यदि कोई इसके विपरीत प्रदर्शन करे तो उसका हमें शक्ति के साथ उत्तर देना है। हमें यह प्रतीत होता है कि आपस की फूट बहुत हानिकारक होती है क्योंकि इस देश में शत्रु हमारी दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाता है। हम हिन्दू हों या मुस्लिम हों, सिख हों या ईसाई, हम सब भारत के पुत्र है और भारत हमारी माता है। इसलिए हम सब को भ्रातृ भाव का पालन करते हुए एकता से काम करना चाहिए और बढ़ते हुए शत्रु का डटकर मुकाबला करना चाहिए। ऐसे असंख्य लोकगीत युगों-युगों से लोकवाणी में मुखरित होते रहे हैं और होते रहेंगे। अर्थात् उपर्युक्त लोकगीत यहाँ के लोकजीवन में भी चरित्रार्थ होते हैं कि इन शूरवीरों के शौर्यगान की अमरगाथा को लोकगीतों की अभिव्यक्ति से विभिन्न उत्सवों केअवसर पर गया तथा सुनाया जाता है। इस प्रकार शौर्यगान को अविस्मरणीय बनाने में लोकसाहित्य की प्रमुख विधा लोकगीतों का विशेष योगदान है।

वस्तुत: साहित्य समाज का दर्पण है और समाज के निर्माण तथा उसे जागरूक करने में साहित्य का विशेष महत्त्व रहता है उसी प्रकार लोकजीवन की यथार्थ झांकी को प्रस्तुत करने में लोकगीतों का भी अमूल्य योगदान है। इस कथन को सत्यापित करने हेतु रामधारी सिंह दिनकर का कथन प्रस्तुत है कि 'जब-जब किसी देश की राजनीति लड़खड़ाती है, तो साहित्य उसे सहारा देता है। साहित्य का धर्म है कि वह समाज को सही दिशा की ओर ले जाए' यह पंक्ति हमेशा यह याद दिलाती है की साहित्य समाज का हृदय है। साहित्य के बिना हम किसी सभ्य राष्ट्र या समाज की कल्पना नहीं कर सकते। उसी प्रकार लोकजीवन को सही दिशा दिखाने तथा जागरूक करने में लोकसाहित्य का भी अमूल्य योगदान है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. ज्वाला प्रसाद, हिमाचली लोकगीतों में रस सौष्ठव, हिमप्रस्थ, जुलाई, 1986, पृष्ठ 30
2. गोवर्धन सिंह, जुब्बल के लोकगीतों में वीर रस : पंच्जगत, मई 1964 पृष्ठ 31
3. गोवर्धन सिंह, 'वीरों की कहानी लोकगीतों की जबानी' हिमप्रस्थ, दिसंबर, 1965, पृष्ठ 3
4. राम जसटा, पर्वतों की गूंज हिमाचल पुस्तक भण्डार, 1984 पृष्ठ -70 -71
5. राम प्रेमी, प्रेमिलस्वर, त्रिलोक प्रकाशन रोहड़ू, शिमला, 1990 पृष्ठ 108
6. मोतीलाल घेई, लोकगीत : हिमप्रस्थ, सितम्बर 1960 पृष्ठ 42
7. राम जसटा, महासुई लोकगीतों में बिम्ब विधान: हिमप्रस्थ, जुलाई, 1976. पृष्ठ 14
8. पदम् चंद, कुल्लूई लोकसाहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1971, पृष्ठ 333
9. कृष्णचंद कायथ, हिमाचली लोकगीतों में गीता दर्शन, हिम भारती, मार्च, 2970 पृष्ठ 42
10. दर्शाना देवी चौधरी, लोकगीत ग्राम जीवन की झलकियाँ: हिमप्रस्थ, मार्च 1959 परीश 40

- डॉ. भवानी सिंह,
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय.
समरहिल, शिमला
Email: bhawanisinghhpu@ gmail.com

कबीर : मानवीय एकता के विधायक

-डॉ. सरबजीत कौर राय

भक्तिकाल के घोर विषमतापूर्ण वातावरण में अवतरित संत कबीर एक ऐसे जननायक है जिन्होंने अपने संवेदनशीन हृदय की मानव हितैषी तरंगें, जन-हितैषी सागर में विलीन समाहित करके मानवीयता की शुष्क हो चुकी धरा को सींचा। उनकी वाणी में जन हित सद्भावना, सहचर्यता तथा विश्वबंधुत्व की झलक आलोकित है। इनकी बहुजन हिताय संवेदना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण, विश्व व्यापक घर कर चुकी ईसा द्वेष, प्रतिशोध, तोभतात्रया, हिंसा, वैर-वैमनस्य ताकत का घमंड, निज प्रसार हेतु दमन की प्रवृत्ति (रोग) के उपचार के लिए अत्यन्त कारगार साधन (मलहम) सिद्ध हुए। वह संपूर्ण जीवों को उसी एक परमात्मा को अंश मानकर आपसी प्रेम-सहयोग, अहिंसा, दया-करुणा, सहजता, परोपकारता, सहनशीलता, सहानुभूति, तथा सद्भावनात्मक व्यवहार अपनाने का संदेश देते हुए कहते है-

''कह कबीर इहु राम की अंसु।
जस कागद पर मिटै न मंसु।।''

कबीर मानव के भौतिक अस्तित्व से बहुत चिन्तित थे। इन्हें लगता था कि यह देह मिट्टी के पुतले के समान क्षणभंगुर है। जगत में व्यक्ति का आना एक अतिथि में बढ़कर कोई अर्थ नहीं रखता। लाखों-करोड़ों के मालिक भी अंत में कुछ साथ नहीं ले जा पाते, उन्हें नंगे पांव ही जाना पड़ता है। प्राण निकल जाने पर हड्डियां लकड़ी की तरह जल जाती हैं और केश घास की भाति धू-धू करने लगते हैं।[3] माता, पिता, भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि सभी सम्बन्ध धोखा मात्र है।' कबीर के लिये मानवीय सम्बन्धों की यह सुखद पिपासा की दुखद परिणति बहुत ही निराशाजनक थी, वह जानते थे- दुखों की मूल त्रासदी, सुख की परिकल्पना का ही परिणाम है, फिर भी मनुष्य अज्ञानतावश निज-असिसत्व की रक्षा तथा प्रसार हेतु भटकता रहता है-

''ऐसा कोई न मिलै जाऔ रहसि लागि।
सब जग जरता देखिया अपनी अपनी आगि।।[4]

कबीर इस तथ्य से भली भांति अवगत थे कि मानवीय एकता के विधान में सबसे बड़ी बाधा समाज में व्याप्त अंधविश्वास, आडम्बर, पाखंड, ऊँच-नीच, भेद-भाव, जाति-बन्धन, धार्मिक तथा सामाजिक विषमताएँ एवं मतभिन्नता है। मानवता के कल्याण के लिए इनका निवारण आवश्यक है, वह इस मूल्य-रहित, संवेदन-शून्य संसार को रहने लायक न मानते हुए कहते हैं :

बाबा अब न बसहु यह गाउ।
घरी-घरी का लेखा मांगे काउथु चेतू जाऊँ॥

और धार्मिक विवाद को निपटाते हुए यही संदेश देते हैं-

''निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगति की गति लखी न जाई।।''

सम्पूर्ण समाज को एक मार्ग पर लाने के लिए तथा मतान्तरों को मिटाने का प्रयास करते हुए उन्होंने इस ब्रह्म का नाम 'राम' माना, परन्तु उनके राम व राम नहीं जो दशरथ सुत के रुप में विख्यात हैं। कबीर का यह राम निराकार है, निर्गुण है, वाणी-व्यंजन से ऊपर है, सर्वव्यापक है जो केवल चिन्तन से अनुभव किया जा सकता है। वह कहते हैं :

''हम वासी उस देश को, जहां जाति कुल नाहि।
शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलाया नाहि।।''

वह समूह मानव जाति को एक ही पिता की संतान माकर, आदमी आदमी के बीच व्याप्त भेद-भाव को मिटाकर ऐसे समाज की सृजना करना चाहते थे, जिसमें प्रत्येक प्राणी को सम-भाव मिल सके, क्योंकि यह सारी सृष्टि उस परम सत्त की रचना है, उसी से उत्पन्न, उसी में विलीन है-

''पांच तत्व का पुतला, रज बीरत की बूंद।
एकै घाटी तीसरा, ब्राह्मण क्षत्री शूद्र।।''

वह धार्मिक कट्टरता के नाम पर दंगे-फसाद करवाने वाले धर्म गुरु, नेताओं की भर्त्सना करते हुए कहते हैं :

''हिंदू तुरक कहां ते आये किन एक राह चलाई।
दिन माहि सोच विचार कवादे मिस्त दोजक कित पाई।।
काजी तै कौन कतेब बखानी।''[8]

कबीर के सर्वव्यापक ब्रह्म की लालिमा सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है, सभी जीवों में आत्मिक-तात्त्विक एकता है, प्रत्येक कण उसी के रंग में रंगा है, उसी से प्रकाशित है-

''लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लालीदेखन मैं गई, मैं भी भई निहाल।।''[9]

कबीर ग्रंथावली में ऐसे अनेक पद हैं, जिसमें वह समाज के तथाकथित पंडितों को भी यही पूछ रहे हैं कि यद्यपि सभी प्राणियों का जन्म एक ही मूल से हुआ है, तो यह भेद-भाव किसने उत्पन्न किया है ?

''एक बूंद एकै मलमूतर
एक चाम एक गूदा।
एक जोति थै सब उत्पना
कौन वाभन कौन सूद।।''

और तत्कालीन समाज के महंतों को भी फटकारते हुए सवाल करते हैं कि धर्म के नाम पर तुम जीव की बलि देकर कौन सा पुण्य कमा रहे हो ? अगर ऐसा अधर्म करके भी आप उसको देवता की बलि देकर शास्त्र उचित समझते हैं, ऊपर से अपने आप को साधु भी कहते हो तो फिर यह बताओ कसाई कौन है ?

''जीव बहु सु धरम करि थापहु,
अधरम कहतु कत भाई।
आपस कहु मुनिवर कर थापहु,
काकौ कहो कसाई।''[10]

कबीर जीव हत्या के पक्ष में नहीं थे, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और मनुष्य के रक्त-माँस में कोई अन्तर नहीं है। सभी की जान अमूल्य है, कोमल है, दर्द और वेदना समान है, इसलिए हिंसा सहीं भी क्षमायोग्य नहीं

''जस माँस नर की, तस माँस पशु की,
रुधिर रुधिर इक साराजी।''[11]

पशु की, मास-भक्षी मनुष्य, भले ही वह हिन्दू है अथवा मुसलमान, सब की निन्दा करते हैं-

''खून करे मिसकीन कहावै, गुन ही रहे छिपाए।।''[12]

उन्होंने वर्तमान समय तक निरन्तर पनप रही, उस रुढ़िवादी सोच का विरोध किया, जो मानवता के लिए घातक है। वह जानते थे कि सत्ता के लालसी धर्म के ठेकेदार स्वार्थ हेतु जन-साधारण को बाँटकर रखना चाहते हैं, वास्तव में सभी एक हैं-

"एक निरंजन अलह मेरा,
हिन्दू तुरक दुहु नहिं मेरा।
राखू व्रत ने मरम न जान,
तिसही सुमस जो रहे निदाना।।''

वह धर्म के नाम पर किये जाने वाले आडम्बरों को नकारते हैं और मनुष्य के ईमान कर्त्तव्य को ही असली धर्म कहते हैं-

''ओ हिन्दु- ओ मुसलमान, जिसका दुरग रहे ईमान।''

सदाचार पर बल देकर कहते हैं कि जो मनुष्य सद्-चरित्र अपनानकर, ईमान की रक्षा करता हुआ सत्य मार्ग पर चलता है, वह कभी विचलित नहीं होता-

''सो मुल्ला जो मन सौ सरे, अहनिसि काल चक्र सो भिरै।
काल पुरुष का मरदे मानु, तिस मुल्ला को सदा सलाम।''

कबीर ने शोषण-मूलक सामन्वती व्यवस्था का विरोध करते हे न केवल उस वर्ग से गहरा तादात्म्य स्थापित किया जो सामन्ती दमन चक्र में पिस रहा था अपितु उस की वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि :

''जब लग ऊच-नीच करि जाना,
ते पसुवा भूले भ्रम जाना।''

सामन्ती अवधारमा जिसमें व्यक्ति की श्रेष्ठता कुल से निर्धारित की जाती है, को नकारते हुए कर्म के महत्त्व पर बल देते हैं-

''ऊंचे कुल क्या जनमियां, जे करणी ऊच न होई।''

वह प्रेम को महत्त्व देते हुए उस खोखले ज्ञान को नकारते हैं, जो मानवीयता के प्रति संवेदनशील नहीं

''ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित होए।।''

पुस्तकीय ज्ञान जिसमें जनहित भावना नहीं, उसे व्यर्थ बनाते हैं-

''पढ़ि-पढ़ि के पत्थर भया लिखि लिख भया जुइंट,
कहै कबीर प्रेम की लगी न एकौ छींट।''

देखा जाए तो आज भी आपसी वैर, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, संकीर्णता, भेद-भाव दमन शोषण, सत्ता लोलुपता के लिए हो रहे षड्यन्त्र, अनेक समस्याएं हैं, जो मानवता के लिए घातक हैं, जिनका लाभ सामन्ती सोच के समाज-विरोधी लोग उठा रहे हैं, इसमें साधारण जनता पिस रही है, तो वर्तमान समय में कबीर और भी सार्थक हो जाते हैं उनकी मानव हितैषी भावना जिसमें संपूर्ण विश्व के कल्याण की कामना है का महत्त्व और भी बढ़ जाता है-

''कबीर खड़ा बाज़ार में, मांगे सब की खैर,
न काहूं से दोस्ती, न काहूं से बैर।''

वस्तुत: कबीर वाणी का मानवतावादी स्वर 'बहुजन हिताय' की भावना अपनाकर मानव विकास की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हुए ऐसे भय रहित समाज की स्थापना करता है, जिसमें बिना किसी परिवेशजन्य तनाव के, सभी परिश्रमी-उद्यमी व्यक्ति प्रसन्न हो भूमंडलीकरण युग में रंग, नस्ल, धर्म, जातीय, देश-काल की भिन्नता से परे रहकर, सभी जीवों में एक ही प्रकाश की अनुभूति-अनुभव करें ताकि विश्व-विकास के द्वार खुल जाएं तथा विज्ञान और तकनीक का सदुपयोग हो, और यह वैश्विक विकास मानव हितैषी हो जाए।

संदर्भ-

1. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-120
2. वाणी भक्त कबीर जी, संत- जोध सिंह, पृष्ठ-224 वही,
3. वही, पृष्ठ- 219
4. वही, पृष्ठ 218
5. वही, पृष्ठ-208
6. वही, पृष्ठ-158
7. वसिष्ठ, पृष्ठ-17/13, गौतम
8. आपस्तंब, पृष्ठ-25/3
9. मनु, पृष्ठ-9, 379
10. वाणी भक्त कबीर जी, संपा0 - जोध सिंह, पृष्ठ-218
11. वही, पृष्ठ-206
12. वही, पृष्ठ- 207

-डॉ. सरबजीत कौर राय
प्रिंसीपल लायलपुर खालसा कॉलेज फॉर विमन,
जालंधर।

गुरु नानक वाणी में नैतिकता का संकल्प

-डॉ. अमरदीप देओल

नैतिकता मानव समाज की वह सकारात्मक शक्ति है जो मनुष्य को प्रगति-सुरक्षा और शांति की ओर अग्रसर करती है। इसके आधार सच-झूठ, अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित का निर्णय किया जा सकता है। नैतिक पर आधारित मूल्यों का विस्तार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है तथा न केवल व्यक्ति बल्कि परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व प्रत्येक घटक इनसे प्रभावित होता है। यद्यपि नैतिकता का सिद्धांत सीमाओं से ऊपर है परंतु मोटे तौर पर वह सारे गुण, आचार, व्यवहार, नैतिकता की कोटि में आते हैं जो व्यक्ति के साथ-साथ अन्य लोगों के भी सर्वपक्षीय विकास में सहायक हों। नैतिकता का महत्त्व एवं अनिवार्यता को इस बात से समझा जा सकता है कि संसार के लगभग सभी दर्शन शास्त्रों, समाज शास्त्रों एवं मनोवैज्ञानिक शास्त्रों में इसे मानव के लिए अत्यावश्यक माना गया है। इन्साइकलोपीडिया ऑफ ब्रिनिका के अनुसार, ''व्यक्ति की अपेक्षा समष्टि पर बल देते हुए समाज की भलाई या कल्याण के लिए और समाज की आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए नैतिक-संहिताओं का निर्माण हुआ है।''

भारतीय संस्कृति में हमेशा से ही नैतिक मान्यताओं के प्रति सजगता एवं संवेदनशीलता रही है। यही कारण है कि हमारे लगभग सभी शास्त्रों, ग्रंथों, संहिताओं में आचार-व्यवहार संबंधी नीति-अनीति की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इसी संदर्भ में यदि हम गुरु नानक देव जी की वाणी का अध्ययन करें तो हमें नीति अपना नैतिक मूल्यों के पालन तथा अनीति निषेध के अनेक संदर्भ दिखाए देते हैं बल्कि गुरु नानक ने तो धर्म और नैतिकता को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। इस संबंध में डॉ. सुरिंदर सिंह कोहली का वयक्तव्य है। 'गुरु नानक देव जी की सदाचार नीति तथा धर्म में अन्त: संबंध है। यह उनके विचारों की देह तथा आत्मा है। स्वयं को वश में रखने के लिए आचण संबधी नियमों का होना आवश्यक है। सदाचार नीति आत्मा के भनव का आधार है। जब तक सदाचार के गुण पैदा न किए जा सकें तब तक जिज्ञासु आत्मा के उच्च सस्तर तक नीं पहुंच सकता।'[2]

गुरु नानक देव जी की वाणी में नैतिकता के संकल्प में सत्य को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है क्योंकि उन्होंने ईश्वर को ही सत्य स्वरुप माना है। इसी क्रम में वह सच्चे गुरु, सच्च कर्म, सच्चे शब्द पर बल देते हैं और मनुष्य को सत्य आचरण की शिक्षा देते हैं। सत्यत व्यक्ति के जीवन को संवारता है और उसके जीवन के सृजनात्मक पक्ष को उजागर करता है-

''नानक सत्रु सवारण हारा।''

गुरु साहिब के अनुसार सत्य एक ऐसी औषधि है जो मनुष्य के शरीर को सभी पाप कर्मों से मुक्त कर शुद्ध बना देती है। जो मनुष्य इस प्रकार सतत्यत का अनुकरण करता है स्वयं गुरु नानक देव उनकी पूजा-अर्चना करते हैं-

''सचु ता पस जावीए, जा रिदै सचा होइ।
नाक बखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ।'[4]

जहां एक ओर गुरु नानक सत्य को सर्वोच्च स्थान देते हैं वहां असत्य आचरण की कड़ी निंदा भी करते हैं। यहां तक कि असत्यत आचरण या असत्य वचन की तुलना मुर्दे का मांस खाने के समान माने हैं। वे असत्य / झूठ को 'कूड़' कहते हैं-

''कूड़ बोली मुदार खाई।''

गुरु साहिब ने सत्य के साथ-साथ संतोष की प्रवृत्ति को भी अपनो पर ज़ोर दिया है। संतोष मनुष्य में धैर्य, सहशीलता, परस्पर सहयग और भ्रातृभाव के भावों को जन्म देता है और इस प्रकार संसार में धर्म की स्थापना में मुख्य सहायक तत्त्व का कार्य करता है-

''धौल धरमु दइआ का पूत।
संतोष थापि रखिआ जिनि सूति।।'[5]

गुरु नानक कहते हैं कि श्रेष्ठ बुद्धि को माता तथा संतोष को पिता स्वीकार करना चाहिए कभी मनुष्य सत्य, उत्तम कर्म करने में सफल होगा-

''माता मति पिता संतोखु।

सतु भाई करि एह विसेखु।।''[6]

गुरु साहिब ने अपनी वाणी में प्रेम, सेवा, दया, परोपकार, नम्रता, मीठी वाणी को भी मनुष्य के नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक माना है। सिद्ध गोसटि में मानव के प्रति प्रेम के महत्त्व को समझाते हुए कहते हैं कि जो प्राणी अन्य जीवों को भी अपने जैसा ही समझता है वही प्रशंसा का अधिकारी है। यही प्रेम सेवा का मार्ग प्रशस्त करता है। वैयक्तिक सीमाओं को लांघ कर सर्वकल्याण हेतु कार्य करना ही सेवा है। गुरु नानक ने तो परमात्मा से मिलन की पहली सीढ़ी ही सेवा को माना है–

''विचि दुनिया सेव कमाईऐ ता दरगह वैसणु पाईऔ।''[8]

इसी प्रकार दूसरे प्राणियों के प्रति दया एवं करुणा की भावना तथा परोपकार की वृत्ति को भी गुरु नानक वाणी में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विशेषत: ज्ञानवान व्यक्ति को तो विशेष रूप से परोपकारी होना चाहिए क्योंकि वह वैचारिक धरातल पर सभी संकीर्णताओं से मुक्त हो जात है, ऐसा गुरु साहिब का कथन है–

''विदिआ विचारी ता पर उपकारी।''[9]

गुरु नानक देव जी ने विनम्रता एवं मीठी वाणी को भी सदाचरण का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। उनके अनुसर विनम्रता सभी गुणों का सार तत्त्व है–

''मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईयां ततु।''[10]

उपरोक्त वर्णित सदगुणों के अतिरिक्त गुरु नानक देव जी अपनी वाणी में परनिंदा, झूठ, स्वार्थ, परस्त्री गमन, चुगली, आडंबर, अहंकार, तृष्णा आदि अनैतिक कार्यों का कड़े शब्दों में निषेध किया है जो उनेक नैतिकता सबंधी आग्रह को और पुष्ट करता है। उन्होंने जिस नैतिक आचरण को अपनाने पर बल दिया है उसका सीधा संबंध मानव समाज के कल्याण से है। वर्तमान परिदृश्य में गुरु साहिब की यह नैतिक अवधारणा को समझना और अपनाना और भी आवश्यक हो चुका है। आज विश्व में हर और असंतोष, असमानता और हिंसा का बोलबाला है। परस्पर बढ़ता हुआ द्वेष, ईर्ष्या, घृणा इस बात का स्पष्ट संकेत है कि आज नैतिक मूल्यों का पूर्णत: पतन हो चुका है। बाज़ारवादी ताकतों, विकास की अंधी दौड़ तथा आधुनिकता के खोखले दावों ने हमारी नैतिकता का गला घोंट दिया है। हमारी शिक्षा प्रणाली से आज नैतिक पाठ अदृश्य हो चुके हैं जो हमारी भी पीढ़ी को सही दिशा-निर्देश दे सकें। ऐसे में गुरु नानक देव जी की वाणी में प्रस्तुत नैतिकता का संकल्प हमारे लिए एक प्रकाश स्तंभ के रूप में रखा है। प्राणी में प्रतिपादित नैतिक मूल्य विश्व में व्याप्त असंतोष, असमानता, विद्रोह एवं स्वार्थ को समाप्त कर मानवता को शांति और कल्याण के पथ पर अग्रसर कर सकता है। युद्ध और आतंक की आग में जलता हुआ विश्व गुरु नानक द्वारा सुझाए नैतिक मानदण्डों को अपना कर निश्चय ही सुनहरे भविष्य का स्वप्न देख सकता है।

संदर्भ :

1. इन्साइकलोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, वॉल्यूम, पृ. - 0756
2. गुरु नानक जीवन, दर्शन ते काव्य कला, सुरिंदर सिंह कोहली (संपा.), पृ.-65
3. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.-348
4. वही, पृ.-468
5 वही, पृ.-140
6. वही, पृ.-3
7. वही, पृ.-151,
8. वही, पृ.-26
9. वही, पृ.-356
10. पृ.-470

- डॉ. अमरदीप देओल

एसोसिएट प्रोफसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

लायलपुर खालसा कॉलज फॉर विमन, जालंधर।

मो. 98720-39391

पापी पेट की महामारी का तमाशा : स्वदेश दीपक की कहानियों में हाशिए का स्वर

- अभिजीत सिंह तोमर- प्रो. (डॉ.) सुनील

बाज़ीचा-ए-अतफ़ाल है दुनिया मिरे आगे
होता है शब-ओ-रोज़ तमाशा मिरे आगे।
-मिर्ज़ा ग़ालिब

यह शब-ओ-रोज़ का तमाशा ही है जो स्वदेश दीपक की लगभग सभी कहानियों में दृष्टिगोचर है। जिस सहजता व सूक्ष्मता के साथ इस तमाशे की अभिव्यक्ति में उनकी कलम सक्षम है, उससे कहा जा सकता है कि यह दुनिया उनके लिए 'बाज़ीचा-ए-अतफ़ाल' (बच्चों के खेल का मैदान) ही है। रामदरश मिश्र के अनुसार, 'हर सर्जक के पीछे एक दृष्टि होती है। वह दृष्टि सहज ही नहीं मिल जाती, युगीन परिस्थितियों और चेतनाओं के परिवेश में जीवन-सत्यों को पहचानने की शक्ति प्राप्त करने से मिलती है। अत: इस नवीन दृष्टि से संपन्न व्यक्ति ही समाज के नए प्रश्नों, भाव-सौंदर्य के नए आयामों, नए मूल्यों, नए सामाजिक संबंधों को समझ सकता है, वही सृजन कर सकता है।'

स्वदेश दीपक में अपने समय की युगीन परिस्थितियों और जीवन-सत्यों को पहचानने की अंतर्दृष्टि सहज रूप में मौजूद थी, जिसकी वजह से उनकी पहचान एक प्रबुद्ध सर्जक के रूप में स्थापित हुई। उनका जन्म 6 अगस्त, 1942 को रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। उनके पिता का नाम दामोदर भारद्वाज एवं माता का नाम सोमा है। सन् 1947 में देश के बँटवारे के बाद वे राजपुरा, पंजाब आ गए और यहीं उनका बचपन व्यतीत हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. (अंग्रेजी) एवं एम.ए. (हिंदी) की शिक्षा प्राप्त की। आगे का उनका जीवन अंबाला छावनी में व्यतीत हुआ, जहाँ गाँधी मेमोरियल नेशनल (जी.एम.एन.) कॉलेज में उन्होंने 22 वर्ष बतौर अंग्रेजी प्रोफेसर अध्यापन कार्य किया। सन् 1991 से 1997 तक वे मनोरोग से ग्रस्त रहे। जून 2006 की एक सुबह स्वदेश दीपक सैर पर निकले और कभी वापस ही नहीं लौटे। उनका कहीं कोई पता नहीं चल सका।

स्वदेश दीपक का साहित्य सामाजिक एवं समस्यात्मक है। जीवन की अनेक कुरूप लेकिन सर्वथा यथार्थ सच्चाइयों को व्यक्त करने में उनकी कलम कहीं भी झिझकती हुई दिखाई नहीं पड़ती। उनकी कहानियों में हाशिये का स्वर प्रखरता के साथ मुखर है और गरीबी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। उनके साहित्य में मृत्यु एक शाश्वत सत्य एवं दु:ख एक शाश्वत संवेदना की तरह उपस्थित रहा है। यथार्थ की मार्मिकता सहन न कर पाने वाले उन्हें अति-यथार्थवादी साहित्यकार भी कहते हैं। उनका लेखन उनके व्यक्तित्व की तरह निर्भीक व ज्वलंतशील रहा है। स्वदेश ने दो उपन्यास, पाँच नाटक, नौ कहानी संग्रह एवं एक आत्म-संस्मरण मिलाकर कुल सत्रह पुस्तकों की रचना की है। उन्हें सन् 2004 में संगीत नाटक अकादेमी सम्मान मिला था। उनकी सबसे चर्चित रचना 1991 में प्रकाशित नाटक 'कोर्ट मार्शल' है। 2003 में प्रकाशित 'मैंने मांडू नहीं देखा - खंडित जीवन का कोलाज' मनोरोग से उनके संघर्ष की दास्तान है। इस शोध आलेख में स्वदेश दीपक के कहानी-संग्रह 'तमाशा' की कहानियों को केंद्र में रखा गया है। यह संग्रह सन् 1979 में पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इस कहानी-संग्रह में 11 कहानियाँ-तमाशा, क्या कोई यहाँ है?, जयहिन्द, एक बार फिर, प्रतिद्वंद्वी, क्योंकि मैं उसे जानता नहीं, मुझे टॉफियाँ अच्छी नहीं लगतीं, पापी पेट, दहलीज, शब्द! शब्द! शब्द!, महामारी-संगृहीत हैं।

सर्वप्रथम हाशिये के अर्थ और परिभाषा पर विचार करेंगे। 'लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश' के अनुसार 'हाशिया' का अर्थ है- 'किनारा, पाड़, लिखने के समय कागज के किनारे खाली छोड़ी हुई जगह, उपान्त।'

मानक हिन्दी कोश के अनुसार- 'किसी फैली हुई वस्तु का किनारा/कोर/बारी। जैसे- किताब का हाशिया, कपड़े का हाशिया (बॉर्डर)।'

हाशिये का अंग्रेजी में शब्दांतरण है 'मार्जिनलाइज्ड'। उपर्युक्त अर्थों के अनुसार कहा जा सकता है कि ध्यान-बिंदु के केंद्र से इतर, कम महत्व प्रदान किए जाने वाले अंतिम छोर में स्थित स्थान को हाशिया कहा जाता है। सामाजिक स्तर पर जब व्यक्ति ऐसी स्थिति

में होता है, तब ऐसे व्यक्तियों के समूह द्वारा हाशिये के समाज की अवधारणा जन्म लेती है। 'रॉबर्ट ई. पार्क' ने अपने लेख 'मानव का स्थान परिवर्तन और सीमांत आदमी' (Human Migration and Marginal Man) में 'सीमांत आदमी' (Marginal Man) के नाम से हाशिये की अवधारणा को पहली बार व्यवस्थित रूप से पेश किया। तत्पश्चात् स्टान्क्विस्ट, क्रेच एवं क्रचफील्ड, शैरिफ आदि विद्वानों ने इस अवधारणा का विकास किया। प्रारंभ में इस हाशिये या सीमान्तता को स्थान परिवर्तन, दो संघर्षरत समूहों या समाज के बीच फँस जाने एवं वर्ण संकरता तक ही सीमित रखा गया था। समय के साथ इसके अर्थ विस्तार में वर्चस्ववादी या बृहत्तर समूह द्वारा नकारे गए अल्पसंख्यक समूहों को भी शामिल किया गया। देवेन्द्र चौबे के अनुसार, 'विभिन्न प्रजातियों के बीच के अंतसंबंध के उत्तरोत्तर विकास, किसी समुदाय या उस समुदाय के सदस्य द्वारा अन्य समुदाय में व्यवस्थित होने की प्रक्रिया, सांस्कृतिक परिवेश में विकसित हो रहे व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया अथवा किसी समूह या व्यक्ति द्वारा स्थान परिवर्तन के बाद उत्पन्न और विपरीत परिस्थितियों के कारण आसन्न संकट के अनुभव के दौर से गुजर रहे व्यक्ति या समूह के चरित्रों तथा समस्याओं के अध्ययन को लेकर इस अवधारणा का विकास हुआ है।' आर्थिक और सामाजिक विकास व्यक्ति, परिवार, समाज, समुदाय या समूह के हाशियेपन के निर्धारण में अति महत्वपूर्ण कारक हैं।

इसलिए हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्रीय दृष्टि में वह व्यक्ति समूह हाशिये में आते हैं जो मुख्यधारा से विस्थापित हैं तथा अपने मौलिक अधिकारों व सार्वभौमिक विकास से वंचित हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं द्वारा शोषित एवं प्रताड़ित ये लोग समान अवसरों की कमी के कारण आर्थिक तौर पर अभावग्रस्त जीवन जीते हुए अपने अस्तित्व रक्षा हेतु दैनंदिन संघर्षरत हैं। अतः स्त्री, आदिवासी, दलित, वृद्ध, श्रमिक, असंगठित कर्मकार, घुमंतु या घुमक्कड़ समूह आदि हाशिये के समाज के अंतर्गत आते हैं।

हाशिये का स्वर मुखरित करती हुई स्वदेश दीपक की प्रतिनिधि कहानियों में 'तमाशा', 'जयहिन्द' और 'पापी पेट' शामिल हैं। 'तमाशा' में खेल-तमाशा दिखाने वाले परिवार व उनके जीवन की त्रासदी का वर्णन है। 'जयहिन्द' में राजमिस्त्री जयहिन्द के परिवार और उसकी बस्ती की कहानी है। 'पापी पेट' में भिखारी परिवार (माँ, सात साल का बेटा और बारह साल की बेटी) की कहानी है। स्वदेश दीपक की ऐसी कहानियों में बहुधा पात्रों के कोई नाम नहीं हैं, क्योंकि नाम पहचान का द्योतक है और असल जीवन में भी अक्सर ऐसे व्यक्तियों की कोई पहचान नहीं होती। ये बस प्राकृतिक विवशता से जन्म लेते हैं और जीते चले जाने को बाध्य हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं जो देश की जनगणना में भी गिने नहीं जाते। उनका कोई पहचान-पत्र या राशन कार्ड नहीं होता, जैसे इनका कोई अस्तित्व ही न हो।

स्वदेश की इन कहानियों के पात्रों की जाति का भी कोई ज़िक्र नहीं मिलता। इसका कारण यह भी हो सकता है कि जो अस्तित्व के सबसे निचले पायदान पर अपना जीवनयापन कर रहे हैं, वह सब की दृष्टि में वीभत्स ही हैं। इसलिये सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से हेय इन पात्रों की जाति को रेखांकित करने का महत्व नहीं रह जाता । जाति के वर्णन का नदारद होना स्वदेश के लेखन पर मार्क्सवादी प्रभाव को भी दर्शाता है। 'मार्क्सवादी विचार में 'प्रभुत्व' और 'अधीनता' या 'प्रभावकारी श्रेष्ठता - निम्नता सम्बन्ध' पर बल दिया गया है। इस तरह दो वर्ग पूँजीपति और सर्वहारा पाये जाते हैं।' हाशिया वर्ग की ये कहानियाँ इस सर्वहारा वर्ग के शोषण की कहानियाँ हैं । इस शोषित वर्ग में वर्गीकरण की आवश्यकता लेखक ने नहीं समझी। इसलिये हम कह सकते हैं कि स्वदेश के पात्रों में दलित एवं गैर-दलित का विभाजन देखने को नहीं मिलता । हाशिये की अभिव्यक्ति स्त्री समाज, घुमंतु समुदाय, मजदूर वर्ग, वृद्ध आदि की व्यथा की अभिव्यक्ति के रूप में ही दिखाई पड़ती है। अगर इन पात्रों के रोजगारों पर गौर करें तो कुछ बेरोजगार हैं, कुछ के पास अत्यंत निचले दर्जे के (आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों के अनुसार) रोजगार हैं जिनके द्वारा उनकी दैनिक गुजर-बसर भी मुश्किल है। 'तमाशा' कहानी का तमाशा दिखाने वाला परिवार घुमंतु समुदाय का प्रतिनिधि है । 'जयहिन्द' कहानी में जयहिन्द राजमिस्त्री है जो दुनिया के सबसे खूबसूरत शहर की बड़ी-बड़ी इमारतों को खड़ा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और स्वयं झुग्गी-झोपड़ी में रहने को मजबूर है। 'पापी पेट' के प्रमुख पात्र भिखारी हैं। 'महामारी' कहानी में वृद्ध पिता प्राइमरी स्कूल के मास्टर के पद से रिटायर हैं और बहुत थोड़ी सी पेंशन पर गुजारा कर रहे हैं। 'एक बार फिर ' तथा मुझे टॉफियाँ अच्छी नहीं लगतीं' में भी पिता के पात्र स्कूल में मास्टर हैं एवं माताएँ गृहिणी हैं।

शिक्षा व रोजगार में अवसरों की कमी की वजह से हाशिए में जीवनयापन कर रहे वर्गों की आर्थिक स्थिति बिल्कुल भी अच्छी नहीं होती। रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें स्थान परिवर्तन के लिए भी मजबूर होना पड़ता है। कहानी 'तमाशा' में स्वदेश इसका वर्णन करते हुए कहते हैं, 'शहर-शहर, भूख - भूख और खाली पेट यात्राएँ। भूख का यह दानव किसी भी शहर में दम नहीं लेने देता। किसी घुड़सवार की तरह लोहे की नोकदार जूते से लगातार एड़ मारता रहता है।' अति अभाव की यह स्थिति मानसिक दबाव, हिंसा, कुंठा, ऊब, संत्रास एवं अपराध की जननी है। 'एक बार फ़िर'

कहानी में गरीबी और अपराधिक प्रवृत्ति के अंर्तसंबंध के बारे में स्वदेश कहते हैं, 'गरीबी आदमी को क्रिमिनल बना देती है, लापरवाह बना देती है। वह जल्लाद हो जाता है जो एक झटके से नहीं मारता, इंच इंच मरता किसी को देखता है। बिल्कुल असम्पृक्त, असम्बद्ध, असहाय और विरक्त होकर।' यह हालात ही हैं जो न चाहते हुए भी आदमी की अपराधी बनने पर मजबूर कर देते हैं।

अपनी बेबसी का बदला मनुष्य उन लोगों पर हिंसा के द्वारा निकालता है, जिन पर उसका बस चलता है, जैसे मर्द अपनी बीवी और बच्चों पर हाथ उठा कर। तमाशा कहानी में इसका वर्णन इस वाक्य के साथ किया गया है, 'आगे के लिए पैसे पूरे नहीं पड़ते, लड़का और रोटी माँगता है, घरवाली ताने देती है, गालियाँ देती है, वह उसे पीटता है।' तमाशे वाला अपने बच्चे को भी पीटता है, अपनी पत्नी को भी। इस हिंसा की पराकाष्ठा तब हो जाती है जब वह अपनी पत्नी को चूल्हे की जलती हुई लकड़ी से मारता है। यह बात उसे अंदर-अंदर खाये जाती है। कहानी के अंत में तमाशे वाले के हाथों ही गलती से उसके बेटे की मौत उसे पूर्ण अपराधी बना देती है। 'जयहिन्द 'कहानी में शादी की पहली रात में ही गाँव से ब्याह कर शहर लाई गई पत्नी पर जयहिन्द हाथ उठा देता है। झोपड़ी के बाहर चारपाई पर सोने के कारण पति-पत्नी के निजी पलों के लिए एकांत न मिलने की वजह से पत्नी का यौन मद में पागल जयहिन्द को अंतरंग होने से मना करना इस हिंसा की वजह बनता है । 'मुझे टॉफियाँ अच्छी नहीं लगतीं' कहानी में पिता का पात्र स्कूल का संचालक (हेडमास्टर) है। अनपढ़ तमाशे वाले या चार जमात पढ़े राजमिस्त्री की तुलना में यह पात्र अधिक शिक्षित और सभ्य है। लेकिन वह भी अपनी पत्नी के साथ घरेलू हिंसा करता है। उनका बच्चा इसका साक्षी है जिसकी अभिव्यक्ति कहानी में 'हमेशा की तरह माँ को थप्पड़ों से, लातों से पीटना शुरू कर देंगे।' जैसे कई वाक्यों से हुई है। इसीलिए बच्चे को लगता है कि बात-बात पर स्त्री को पीटना पुरुष के लिए प्राकृतिक है और स्त्रियाँ इसी के लायक हैं। कई अवसरों पर, जैसे जब माँ उसे पीटती है, वह भी माँ को मारने की कल्पना करता है। पिता के अपनी सहकर्मी के साथ नाजायज सम्बन्ध भी हैं।

पापी पेट कहानी में माँ के पात्र ने भीषण गरीबी में रेलवे ट्रैक में गिरा कोयला इकठ्ठा कर और भीख मांग कर जीवन काटा है। कोयले चुनते हुए रेल के पहिये के नीचे आकर टांग कट गई तो उसकी बेटी ने यह काम संभाल लिया। स्टेशन के बाहर बड़े पुल के नीचे बनी एक झोपड़ी में माँ, बेटी व बेटा रहते हैं। बेटा अनाज की बोरियों के गोदाम में चढ़ाने-उतारने में जो गेहूँ के दाने फर्श पर गिर जाते हैं, उन्हें समेटकर घर ले जाता है जिससे वो रोटियाँ बना कर खाते हैं । यह परिवार सामाजिक स्तरीकरण में सबसे अंतिम छोर पर है। ऐसे अभाव में जीने वालों के प्रतिदिन का लक्ष्य होता है अगले दिन तक जीवित रहना । गरीबी और भूख ने उन्हें इस स्तर पर ला खड़ा किया है कि अस्तित्व रक्षा के प्रश्न के समक्ष अस्मिता और शुचिता जैसी धारणाएँ ओछी जान पड़ती हैं। इसीलिए जब अनाज गोदाम के चौकीदार अनाज के बदले बेटी को उनके पास भेजने की मांग रखते हैं तो माँ सोचती है, 'अभी बारह साल की है। औरत होने के निशान भी नहीं दिख रहे। पहले वह सोचती है, न कह दे । लड़की छोटी है । फिर सोचती है, आज नहीं तो कल यह होना ही है। उसकी अपनी सारी उम्र ऐसे ही बीती है। यह असहायता की चरम सीमा है। कहानी के अंत में उन चौकीदारों के द्वारा बेटे का भी दैहिक शोषण किया जाता है। असल में सारा संसार ही उनका शोषक है, क्योंकि शोषण - शृंखला में वे सबसे अंतिम में आते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जहाँ हाशिये में जी रहे पुरुषों की स्थिति बदतर है, वहीं उस वर्ग के स्त्री एवं बच्चों की स्थिति और भी भयावह है। वृद्धों की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं जान पड़ता। 'महामारी' कहानी में स्वदेश ने सेवानिवृत्त स्कूल मास्टर के परिवार के माध्यम से इसे चित्रित किया है। वृद्ध दादी-दादा के जीवन के अभाव, उनकी पोती की एक-एक फरमाइशों से परत-दर-परत खुलते चले जाते हैं। वे उस जीवन का मुकाबला करने में असमर्थ हैं जो उनकी पोती जी रही है; उनके बेटे के सपनों का बचपन, जिसमें वह उन सभी अभावों को भरने की कोशिश कर रहा है जो स्वयं उसका बचपन खा गए। इसलिए माँ, जो पहले यह शिकायत करती थी कि मेरा बेटा बहुत कम घर आता है, उनके घर आने पर कहती है कि 'संतोष जल्दी वापस जाने के लिए कहे तो रोकना मत। अच्छा करता है, यहाँ नहीं आता। इसीलिए गरीबी को महामारी और कुल्हाड़ी की संज्ञा देते हुए स्वदेश कहते हैं, 'अब जाकर कहीं समझ आया है कि पैसे का, पूँजी का यह गलत वितरण, असन्तुलन वह कुल्हाड़ी है जो हमारे सम्बन्धों को काटकर फेंक देती है।[12]

'हाशिये का समाज' उन विभिन्न वर्गों से मिलकर बनता है, जो किसी न किसी प्रकार वर्जनाओं एवं वंचनाओं की शिकार है। यह वंचना एवं वर्जना, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, यौनिक या जातिगत हो, उस व्यवस्था की वजह से है जो शक्तिधारी वर्ग अपनी सत्ता स्थापित रखने के लिए बनाए रखता है। राजनीतिक दल, चाहे वह किसी भी विचारधारा की हो, अपनी वर्चस्ववादी प्रणाली के तहत विकास केवल पूँजीपति वर्ग तक ही केन्द्रित रखती है। सर्वहारा वर्ग को केवल कागजी सपने दिखाकर उनका उपयोग अपने हित के लिए किया जाता है। इस भ्रष्टाचार को स्वदेश की कहानी 'जयहिन्द' बड़ी बेबाकी से उजागर करती है। जिसमें दो राज्यों की राजधानी तथा 'दुनिया के सबसे खूबसूरत शहर' का इनाम प्राप्त शहर के प्रशासनिक एवं राजनीतिक तंत्र मिलकर गरीबों की बस्ती उजाड़कर वहाँ फूलों का बाग़ लगाना चाहते हैं बिगड़े हुए को सुधारने के बदले उसे छुपाने की यह प्रविति शोषण- तंत्र के ढोंग तथा

दोगलेपन को दिखलाती है। यह शोषण तंत्र ही है जिसने हमारे सपनों और शब्दों की पवित्रता को दूषित कर दिया है। तभी 'जयहिन्द ' शब्द के बारे में स्वदेश कहते हैं कि 'जो लोग स्टेज से इसे बार-बार बोलते हैं, उन्होंने ही इसे गाली में बदल दिया है! 13

जयहिन्द कहानी के मर्म को पाश की कविता 'हमारे वक्तों में' के इस अंश से अच्छी तरह समझा जा सकता है-

'ये शर्मनाक हादसा हमारे साथ ही होना था
के दुनिया के सबसे पवित्र शब्दों ने
बन जाना था सिंहासन के पायदान।'[14]

शोषित वर्ग क्यों चुपचाप अपना शोषण सहते चले जा रहा है ? क्यों नहीं वे संगठित होकर व्यवस्था के खिलाफ क्रांति करते और अपने बेहतर दिनों की कल्पना को साकार करते ? महामारी कहानी में पापा से मार खाकर मीनू के जिद छोड़ देने के वाकये से इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास स्वदेश दीपक ने किया है- 'अभावों की मार सच जल्दी समझा देती है। छोटी बच्ची है, कोई सन्दर्भ नहीं समझती, किसी का कुछ ज्ञान नहीं। फ़िर भी एक बार मार खाकर सच समझ गयी है । अगर यह अभावों से घिरे बैठे, चुपचाप जी रहे लोग सदियों से मार खाने के बाद चुप हैं, अपना जो है नहीं माँगते तो फ़िर हैरानी कैसी ? '

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वदेश दीपक हाशिये के समाज की विभिन्न समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, हिंसा, अपराध, समान अवसरों का अभाव, विस्थापन, सुरक्षा का अभाव, अमानवीय स्थितियों में अस्तित्व रक्षा हेतु दैनिक संघर्ष, भ्रष्टाचार एवं शोषण के शिकार, अभाव की वजह से संबंधों का विघटन आदि का चित्रण अपनी कहानियों में करते हैं । लेखक उस व्यवस्था को भी उजागर करते हैं जो उनके शोषण की भागीदार है । स्वदेश अपने लेखन में हाशिये के उस अंतिम व्यक्ति तक पहुँच पाते हैं जिसका कोई स्वर नहीं बचा है। उनके लेखन में उस व्यक्ति, उस समुदाय की दबी हुई चीख गूँजती है। पाठक जब उनके लेखन से रूबरू होता है, तो यह चीख उसकी अंतरात्मा में उतर जाती है । फ़िर पाठक स्वयं को हाशिये पर खड़ा पाता है ।

संदर्भ-सूची-

1. मिश्र रामदरश, आलोचना का आधुनिक बोध, नई दिल्ली - वाणी प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 9
2. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, सं. वर्मा रामचन्द्र, कपूर बदरीनाथ, इलाहाबाद - लोकभारती प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 1010
3. मानक हिन्दी कोश (पाँचवाँ खण्ड), सं. रामचन्द्र वर्मा, प्रयाग- हिन्दी साहित्य सम्मलेन, 2007, पृष्ठ 545
4. हाशिये का वृत्तान्त, नये संघर्ष की अवधारणाएं और हाशिये का समाज, सं. कुमार दीपक, चौबे देवेन्द्र, पंचकुला - आधार प्रकाशन, 2011, पृष्ठ 17
5. शर्मा के. एल., सामाजिक स्तरीकरण, जयपुर - रावत पब्लिकेशन्स, 2011, पृष्ठ 20
6. दीपक स्वदेश, तमाशा, नई दिल्ली - वाणी प्रकाशन, 2024, पृष्ठ 12
7. वही, पृष्ठ 43
8. वही, पृष्ठ 13
9. वही, पृष्ठ 77
10. वही, पृष्ठ 89
11. वही, पृष्ठ 125
12. वही, पृष्ठ 119
13. वही, पृष्ठ 37
14. हम लड़ेंगे साथी चुनी हुई कविताएँ पाश, अनुवादक सुभाष परिहार, अमृतसर-बलराज साहनी यादगार प्रकाशन, 1988, पृष्ठ 119
15. दीपक स्वदेश, तमाशा, नई दिल्ली - वाणी प्रकाशन, 2024, पृष्ठ 125

-अभिजीत सिंह तोमर
शोधार्थी, हिन्दी-विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर (पंजाब)

प्रो. (डॉ.) सुनील
अध्यक्ष, हिन्दी - विभाग एवं अधिष्ठाता, भाषा संकाय
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर (पंजाब)

उषा प्रियवदा की कहानियों में मध्यवर्गीय बोध (कुछ चुनिंदा कहानियों के संदर्भ में)

– डॉ. लवलीन कौर'

विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक व सांस्कृतिक आधारों पर मध्यवर्ग को परिभाषित करते हुए अलग-अलग सभी मत विचारणीय हैं, लेकिन पूरे तौर पर कहा जाए तो मध्यवर्ग समाज का वह वर्ग है जो न तो सामाजिक स्तर पर अपनी कुल मर्यादाओं से मुक्त है, न ही आर्थिक स्तर पर इसके पास कोई ठोस संबल है। यही कारण है कि दोहरी और डावांडोल स्थिति में जीने वाले इस वर्ग को समाज का दुविधाग्रस्त वर्ग भी कहा जाता है। श्रीमती मंजुलता सिंह लिखती हैं- 'मध्यवर्ग की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह कुल मर्यादा को निभाने के लिए अनेक प्रदर्शन करता है और वह प्रदर्शन उसकी आर्थिक स्थिति से मेल न खाकर मानसिक संघर्ष का कारण बन जाते हैं। कुल की मर्यादा रक्षण मध्यवर्ग का सबसे बड़ा शत्रु है। उसे निरंतर तथाकथित कुलीनता और रूढ़िग्रस्त जर्जर मर्यादा से जूझना पड़ता है। उस बहुमुखी संघर्ष के कारण उसकी आंतरिक स्थिति बड़ी खोखली हो गई है, जिसके अभाव की पूर्ति वह अपनी कुलीनता की भावना से करता है। मध्यवर्ग के व्यक्ति अभिजात्य वर्ग तक पहुँचने के आकांक्षी अवश्य रहते हैं, परन्तु आर्थिक अभाव के कारण खोखला प्रदर्शन ही कर पाते हैं। घर में धन न हो, परन्तु कर्ज लेकर वे अपनी ऊपरी शान-शौकत बनाए रखते हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से पंगु होता जा रहा है और अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताओं का शिकार होकर निरंतर मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त होता हुआ अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो सन् साठ का वह समय जिसमें बढ़ते औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव तथा नयी शिक्षा पद्धति के आवरण में समाज में ऐसा समूह उत्पन्न हुआ जो न तो पूरी तरह पश्चिम के रंग-ढंग को अपना पाया और न ही भारतीय मूल्य-मान्यताओं से पूरी तरह जुड़ा रह सका। यह था आजाद भारत का मध्यवर्ग। स्वातन्त्र्योत्तर मोहभंग की स्थिति में यथाशीघ्र ही इस उतावले वर्ग का जन्म होता है जो पूरी तरह से मानसिक द्वन्द्वात्मकता में जकड़ा हुआ था। इसी द्वन्द्वात्मकता के परिणामस्वरूप समाज में विघटन और विखंडन का दौर शुरू हुआ, जिसमें स्वयंमेव (व्यष्टि) का विधान, पारिवारिक टूटन, एकल परिवार व्यवस्था की चाह, मोहभंग, अकेलेपन का संत्रास, दाम्पत्य संबंधों में कसाव, रिश्तों में कसैलापन व रिसाव उपजता है। इन सब खंडित-कुंठित वृत्तियों को महिला कहानीकारों जैसे मन्नु भंडारी, राजी सेठ, शिवानी, ममता कालिया, उषा प्रियंवदा, सिम्मी हर्षिता, मृणाल पाण्डेय, इन्दु बाली इत्यादि ने अपनी कहानियों में बड़ी संजीदगी और सजगता से संजोया है। डॉ. मंजू शर्मा इनके संदर्भ में कहती हैं- 'महिला कहानीकारों ने प्राय: मध्यवर्ग के परिवारों की परिस्थितियों को बहुत निकट से अनुभव किया है और यह अनुभव टूटते हुए रिश्तों और झरते हुए संबंधों का रहा है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि सठोत्तरी महिला कहानीकारों का केंद्रीय कथ्य परिवार के इर्द-गिर्द घूमता है और परिवार का यह संदर्भ टूटते हुए परिवारों की पीड़ा से ओत-प्रोत है।' इस प्रकार कह सकते हैं कि मध्यवर्गीय सामाजिक-पारिवारिक संत्रास को जिस निकट अनुभवी पीड़ा से सठोत्तरी महिला कहानीकारों ने प्रस्तुत किया है, वह युगीन व युगांतरों का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ बन गया है।

'बेबसी', 'प्रतिध्वनियां', 'पराजय', 'कितना बड़ा झूठ', 'जिंदगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', 'मेरी प्रिय कहानियां' कहानी संग्रह तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। साठ के दशक की उषा प्रियंवदा एक बहुचर्चित महिला कहानीकार हैं। इन्होंने दर्जनों कहानियाँ लिखीं जिनमें वापसी, जिंदगी और गुलाब के फूल, कच्चे धागे, दृष्टि-दोष, पिघलती हुई बर्फ, सागर पार का संगीत, छुट्टी का दिन, पूर्ति, कंटीली छाह, दो अंधेरे, चाँद चलता रहा, चांदनी में बर्फ पर, एक कोई दूसरा, झूठा दर्पण, कोई नहीं, मोहबंध इत्यादि कुछ प्रमुख हैं। इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन की ऊब, अकेलेपन का संत्रास तथा पारिवारिक विघटन की समस्या मुख्य रूप से मुखरित हुई है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से उत्पन्न नयी परिस्थितियों ने पीढ़ियों के संघर्ष को जन्म दिया। नए को अपनाने की त्वरा में नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से विद्रोह करती हुई दिखाई देती है। उच्चस्तरीय जीवन की आकांक्षा और स्वत्व की प्रधानता से उपेक्षा, अलगाव और अकेलेपन की भावना पनपती है। उषा की कहानी 'वापसी' अलगाव और अकेलेपन का सटीक उदाहरण है। रेलवे की 35 साल की नौकरी से घर वापस आए 'गजाधर बाबू' केवल 'एक्स्ट्रा' बनकर रह जाते हैं। घर का कोई भी कोना उनके लिए खाली न बचा था। बच्चों की मनमानी तथा पत्नी की बेगैरत नज़रें उन्हें घर में उनकी स्थिति का अहसास करा देती हैं। यथावत पत्नी के कटु स्वर उन्हें गहन अंदर तक झकझोर देते हैं- 'सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़-गांठ करते बूढ़ी हो गयी, न मन का पहना, न ओढ़ा।' अथवा 'सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इसी गृहस्थी का धंधा पीटते-पीटते उम्र बीत गयी।

कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता।' गजाधर बाबू निमित्त एक ए.टी.एम. मशीन से बढ़कर कुछ न थे और वर्तमान तकनीकी युग का यह सच है कि आज हर घर में गजाधर बाबू हैं। धन ही अस्तित्व के पैमाने का सूचक है, यह इस कहानी में बखूबी दर्शाया गया है। कहानीकार ने गजाधर बाबू की मन:स्थिति को बड़ी मार्मिकता से दर्शाया है- 'गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है? गजाधर बाबू उनके जीवन के केंद्र नहीं हो सकते, उन्हें तो अब उसकी शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया।' मध्यवर्गीय जीवनाचर्या में अर्थ की अहम भूमिका को बदलते सामाजिक-पारिवारिक परिवेश के साक्ष्य में बड़ी संजीदगी से संजोया गया है।

'जिंदगी और गुलाब के फूल' भी मध्यवर्गीय पारिवारिक संबंधों के बिखराव का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह बिखराव भाई-बहन के पवित्र रिश्ते में आता है। बिखराव की इस त्रासदी को आर्थिक स्वार्थ लिप्सा में लिप्त मनुष्य की उस मानसिकता के ज़रिए प्रस्तुत किया गया है जो कोमल धागों से पिरोए संबंधों रूपी मोतियों को आर्थिक तार्किक अहंभाव की कैंची से काट बुरी तरह बिखेर देती है। धन, जीवनयापन का एक माध्यम है लेकिन जब घर में इसे सर्वोपरि बनाकर इसके अर्जिता (अर्जनकर्ता) को सातवें आसमान पर चढ़ा दिया जाता है, तो रिश्तों में बिखराव आवश्यक है और हर मध्यवर्गीय परिवार में हो रहा है। पारिवारिक विघटन का अर्थ केवल दाम्पत्य संबंधों में दरार ही नहीं है वरन् परिवार के प्रत्येक सदस्य चाहे वे माता-पिता हों अथवा भाई-बहन, सभी के संबंधों में परिवर्तन पारिवारिक विघटन के अंतर्गत आता है। इस कहानी में छोटी बहन वृंदा और बड़े भाई सुबोध की तकरार दिखाई गई है। सुबोध बेरोजगार होने की वजह से अपनी छोटी बहन द्वारा उपेक्षित है, जो कि पहले उससे डरती भी थी और प्यार भी करती थी। वह बात-बात पर व्यंग्य करती है और सुबोध के कमरे की हर अच्छी चीज़ अपने कमरे में ले जाने को अपना अधिकार समझती है, परन्तु सुबोध का पुरुष हृदय घर में उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं कर पाता। सगी माँ उसकी बेकारी पर उसे ताने देने से नहीं चूकती। यथा- सुबोध के कमरे की अलार्म घड़ी जब हटाकर वृंदा के कमरे में रख दी जाती है तो सुबोध के यह कहने पर कि नयी घड़ी खरीद ले, तो माँ बड़े भर्त्सनापूर्ण स्वर में कहती हैं- 'उसके पास बचता ही क्या है! तुम खर्च करते होते तो जानते।' प्रत्युत्तर में सुबोध- 'नहीं, मुझे क्या पता? हमेशा से तो वृंदा ही घर का खर्च चलाती आयी है। मैं तो बेकार हूँ, निठल्ला।' उषा जी इस कहानी में मध्यवर्गीय प्रवृत्ति के उस पक्ष को भी उजागर करती हैं जहाँ वह अपने अस्तित्व और स्वाभिमान को नि:संकोच धन से ज्यादा अहमियत देता भी है, लेकिन पेट की आग कहीं-न-कहीं उसकी इस सोच को निगल जाने को आतुर है। सुबोध का स्वाभिमान भी उसके आत्म-सम्मान की बलि वेदी पर चढ़ जाता है। 'सुबोध अचानक ही सोच उठा कि वह कहाँ-से-कहाँ आ पहुँचा है। अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर तो उसने अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दे दिया था, लेकिन अब कहाँ है वह आत्म-सम्मान? छोटी बहन पर भार बनकर पड़ा हुआ है।'

यथासंभव वह अपनी मध्यवर्गीय सोच के आड़े स्वाभिमान और पैसे के तराजू में स्वाभिमान की गणना ऊपर करता है, लेकिन परिस्थितियों की वास्तविकता सब कुछ लील जाने को है। उसके अंदर तक तुष्टि का हल्का-सा आलोक था कि इस्तीफा देकर उसने ठीक ही किया। उसके जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान का कड़वा घूँट कैसे पी लेता? स्वाभिमान? सुबोध के होंठ एक कड़वी मुस्कान से खिंच उठे। वाह रे स्वाभिमानी! उसने अपने आप से कहा। अर्थ अभाव और अर्थ अति दोनों ही संबंधों में दरार का कारण बनते हैं। सुबोध और वृंदा के माध्यम से लेखिका ने अर्थासक्ति और अर्थमुक्ति को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

'दृष्टि-दोष' कहानी में रहन-सहन का अंतर अर्थात् जड़-परंपराओं और नए मूल्यों का संघर्ष परिवार को खंडित करता है और अकेलेपन के भंवर में फँसते हैं पति-पत्नी और उनका निर्दोष बच्चा। चंद्रा की साम्ब से इसलिए शादी कर दी जाती है क्योंकि वह आई.ए.एस. अफसर हो गया था, लेकिन साम्ब के संयुक्त परिवार की मध्यवर्गीय जड़-चेतनता चंद्रा को रास नहीं आती और दोनों अलग-अलग रहने लगते हैं, इसका खामियाजा उनके बेटे बंटी को भुगतना पड़ रहा है। बंटी जो हॉस्टल में रहता है, उसे मम्मी-पापा का प्यार एक साथ कभी नहीं मिल पाता। इस बार वह अपनी माँ से कहता है, 'मम्मी, तुम भी स्टेशन आना पापा के साथ। मम्मी, तुम्हें पापा क्यों नहीं अच्छे लगते? मुझे तो बहुत अच्छे लगते हैं। मम्मी... मम्मी... मम्मी।' दाम्पत्य संबंधों में यह बिखराव दोनों के रहन-सहन की अलग-अलग सीमाओं के कारण है। साम्ब चाहे चंद्रा को टिपिकल घरेलू औरत नहीं बनाना चाहता लेकिन घर की मान्यताओं के आड़े उसके पक्ष में कुछ बोलता भी नहीं है। चंद्रा उसे अपने विचारों के अनुसार ढालना चाहती है। विचारों की उथल-पुथल में पड़ी कभी वह साम्ब को इस टूटन का जिम्मेदार ठहराती है, कभी स्वयं को दोषी मानती है तो कभी अपने और कभी साम्ब के घरवालों को। यथा- 'अगर मैंने शादी से पहले इतनी ऊँची कल्पनाएँ न की होतीं तो शायद मैं सुखी हो पाती। अगर साम्ब और उसका परिवार, हर प्रकार से साधारण और मध्यवर्ग का न होता तो शायद मैं इतना असंतोष न अनुभव करती। अगर शादी से पहले मेरी ज़िन्दगी नए कपड़ों, पार्टियों, लेट नाइट्स में लिप्त न होती... अगर डैडी और मम्मी ने मेरे अंदर यह भावना न भरी होती कि मैं सब भाई-बहनों से सुंदर हूँ... अगर मेरी हर इच्छा की तुरंत पूर्ति न हुई होती...' स्त्री के मन में जीवनशैली की बदलती रूपरेखा को हमारा संकीर्ण मध्यवर्गीय समाज अभी भी उसके व्यक्तित्व के नकारात्मक दृष्टिकोण के साथ जोड़कर उसे नीचा और अपनी जड़-चेतन मान्यताओं को ऊँचा दिखाने पर

तुला हुआ है। फलस्वरूप दाम्पत्य संबंध टूटते हैं और सबसे अधिक पीड़ित होती है- अग्रिम पीढ़ी अर्थात् उनके बच्चे। यह कहानी समाज का सजीव चित्र है। कहानी के दूसरे पक्ष को देखा जाए तो यह बात भी विचारनीय है कि स्त्री की बदलाव की ज़िद जायज़ हो, तर्कसंगत हो। अगर केवल स्वयं की स्वतंत्रता और परिवार की जिम्मेदारियों से भागना ही एकल परिवार व्यवस्था का कारण है तो यह सरासर गलत है।

कहना न होगा कि लेखिका ने अपनी कहानियों में ऐसा वातावरण तैयार किया है जिसमें पात्रों के मानसिक उतार-चढ़ाव, उनके व्यवहार, उनकी बातचीत इत्यादि से मुद्दे की सारी बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है। उनकी कहानियों में चित्रित अकेलापन, उदासी, अकुलाहट, असंतोष, एक-दूसरे से न जुड़ पाने की अभिशप्त स्थिति इस युग विशेष की खौफनाक तस्वीर को प्रस्तुत करती है। व्यक्ति जैसे-जैसे बाह्य उपकरणों से जुड़ता जा रहा है, वैसे-वैसे ही आंतरिकता से टूटता जा रहा है। आज अकेलापन एक 'ट्रेंड' बनता जा रहा है। उपकरणों की भीड़ में हर दूसरा आदमी अंदर से अकेला है क्योंकि उसके लिए इस लोनलीनेस (द्यश्ठ्ठद्गद्यद्बठ्ठद्गह्यह्य) का मतलब है व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, जिसके तहत वह अकेले ही सब कुछ मैनेज करके जीने के अहंभाव में रहता है। 'स्वतंत्रता' अगर सांस्कृतिक दायरे में संस्कारों और सीमाओं में बँधकर फले-फूले तो उसका अर्थ सार्थक है और अगर 'स्वतंत्रता' निजता के देश में डूबकर 'इंसान को इंसान' की परिभाषा से ही विमुक्त कर दे तो बड़ा अनर्थ है। 'सम्बन्ध' कहानी की श्यामला अकेलेपन में सुकून पाती है। वह किसी भी तरह के रिश्ते को सामाजिकता के दायरे में न बाँधकर फ्रीलांस जीना चाहती है। 'नींद' कहानी की नायिका पति द्वारा दिए गए अकेलेपन के दर्द में तड़पती है। श्यामला से जब उसका प्रेमी सर्जन (डॉक्टर) कहता है कि वह अपने परिवार को छोड़कर उसके पास आ जाएगा तो वह झट से कहती है- 'क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते, प्रेमी, मित्र, बंधु? क्या सब छोड़ना ज़रूरी है? मैं तो कुछ नहीं माँगती।' जबकि 'नींद' की नायिका कहती है- 'मैं बहुत कम चीज़ों से डरती हूँ, न रोग से, न गरीबी से, न ठंड से। डरती हूँ तो बस एक लम्बी, अंधेरी रात के अकेलेपन से' और उसके त्राण के लिए ही इधर-उधर भटकती है। श्यामला अकेलेपन में जीना चाहती है जबकि 'नींद' की नायिका अकेलेपन में जीने को मजबूर है। 'स्वीकृति' कहानी की 'जपा' भी पति द्वारा दिए अकेलेपन को भोग रही है।

इस पर कह सकते हैं कि उषा की कहानियों में युग का यथार्थ निहित है जो विशेषत: मध्यवर्गीय फलक पर पनपता दिखाई देता है। बदलते परिवेश में टूटते संबंध, असंतोष, अलगाव, बेकारी, उदासी और अकेलेपन के निर्मम चक्रव्यूह में फँसा इंसान जड़ों से खोखला होता जा रहा है। इस खोखलेपन का प्रत्यक्ष या परोक्ष कारण भौतिकवादी मानसिकता है। आज के व्यक्ति के पास सब कुछ होने पर भी न जाने वह किस सुख और सुकून को पा लेने को आतुर है और इस तलाश में वह इतना भटकता जा रहा है कि जो कुछ उसके पास है उससे कटता जा रहा है। उसकी वास्तविक स्थिति उस मूर्ख इंसान की भाँति है जो खाली पुलाड़ (शून्य) में छलांग लगाकर आसमान को हाथ लगा लेने की बात कहता है। उन्नति, तरक्की और सफलता की एक और परिभाषा है लेकिन मौजूदा स्थितियों में मंज़िल को पाने का अर्थ कदमों से धरती को नापकर आगे बढ़ना नहीं, बल्कि इर्द-गिर्द का सब रौंद-कुचल कर, खंडित कर छलांग लगाकर आगे बढ़ना है। उषा की कहानियों में सच में सन् साठ से लेकर आज के तकनीकी परिवेश में बदलती-बिखरती व उड़ती-उमड़ती मध्यवर्गीय मानसिकता कई रूपों-रंगों में सजीव हुई है। लेकिन आवश्यकता है समाज के एक बड़े हिस्से को स्थायित्व प्रदान करने की, ऐसे मूल्यगत बीज बोने की जिनसे उनके अंदर की 'अमीर दिखने की अकुलाहट' खत्म हो जाए और वे वास्तव में अमीर हो जाएँ अपने रिश्तों-नातों और गुणों से। तभी समाज की तस्वीर को बदला जा सकता है। अत: उषा जी की कहानियों में मध्यवर्गीय बोध का सफल चित्रांकन हुआ है।

संदर्भिका :

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, मंजुलता सिंह, नई दिल्ली: आर्य बुक डिपो, 1971, पृ. 16.
2. सठोत्तरी महिला कहानीकार: पारिवारिक विघटन के संदर्भ में (भूमिका से), मंजु शर्मा, नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स, 1992, पृ. 6.
3. जिंदगी और गुलाब के फूल, उषा प्रियंवदा, नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2004, पृ. 100.
4. वही, पृ. 99.
5. वही, पृ. 103.
6. वही, पृ. 108.
7. वही, पृ. 108.
8. वही, पृ. 107.
9. वही, पृ. 108.
10. वही, पृ. 95.
11. वही, पृ. 93.
12. कितना बड़ा झूठ, उषा प्रियंवदा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 13.
13. वही, पृ. 55.

श्यामनारायण पांडेय के काव्य में स्वातन्त्र्य अनुराग

-डॉ. हेतराम भार्गव

अनादिकाल से देश की संस्कृति व इतिहास को सुरक्षित व संरक्षित बनाए रखने में अनेक कवियों ने अपनी वाणी दी है। भारत देश की संस्कृति जितनी विशाल है उतनी ही समृद्ध है। अनेक भारतीय कवियों ने भारत देश की संस्कृति व इतिहास का बड़े शौर्य गाते हुए गान लिखा है। भौगोलिक संपदा के धनी भारत देश को अनेक बाहरी हमलावरों का शिकार होना पड़ा। इतिहास के साक्ष्य से भारत देश पर हजारों विदेशी आक्रमणकारियों ने देश को लूटपाट कर अनेक बार क्षति पहुँचाई। जिसका मुँहतोड़ जवाब भारतीय शासकों ने दिया। परन्तु लगातार बढ़ते विदेशी आक्रान्ताओं के कारण देश की आन्तरिक शासकीय शक्ति कमजोर पड़ने लगी, जिसका पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की हार के साथ गुलाम वंश के सुल्तान मुहम्मद गौरी ने उठाया। अत: 12वीं शताब्दी से लगातार भारत स्वाधीनता खोकर किसी न किसी विदेशी हुकूमत के अधीन रहा। परंतु कवियों की लेखनी हमेशा शौर्य और उमंग का संचार करती रही जिसके परिणामस्वरूप भारत देश 15 अगस्त, 1947 को स्वाधीन हुआ। देश की संस्कृति व साहित्य को मुगल काल में भी अनेक कवियों ने बड़े शौर्य व वीरता के साथ बखान किया है। यहाँ तक कि बीकानेर के कवि पृथ्वीराज राठौड़ ने अकबर के भरे दरबार में मेवाड़ के राणाओं की वीरता का बखान कर भारतीय शूरवीरों की महत्ता सिद्ध की। अत: मुगल काल में भी भारतीय जनमानस पर बढ़ते अत्याचारों से मुक्ति हेतु तत्कालीन वीर कवियों ने अपनी वाणी में शौर्य-हुंकार भरते हुए देश की जनता को जाग्रत करने में अपनी भूमिका निभायी। मुगल काल के वीर कवियों में मान, भूषण, सूदन, पद्माकर, ग्वाल, गुरु गोविन्द सिंह, चंद्रशेखर वाजपेयी, सूर्यमल्ल मिश्रण व पृथ्वीराज राठौड़ इत्यादि वीर कवियों के नाम अग्रगण्य रख सकते हैं। अत: औरंगजेब तक आते-आते मुगल सत्ता भारतीय जनता पर कड़ा रुख अपनाती हुई अनेक करों के बोझ के साथ-साथ धर्मान्तरण पर जोर देने लगी। औरंगजेब जैसे शासकों के विरुद्ध दक्षिण के शिवाजी, मेवाड़ के राणा व पंजाब के सिक्खों ने उसके भारत विजयी अभियान को असफल कर दिया। अत: अब देश में अनेक रियासतें व हिन्दू शासक स्वतंत्र होने लगे। इन्हीं विचारधाराओं को पल्लवित करने में देश की रियासतों के दरबारी कवियों का विशेष योगदान है। अत: देश में जनजागृति व स्वाधीनता के मूल्य की उद्भावना भारतीय कवियों की शूरता ने प्रदान की। सच्चे अर्थों में यदि देश की स्वाधीनता को जन-जन तक पहुँचाने में कवि व साहित्यकारों का अमिट योगदान कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भारतीयों के नैतिक मूल्यों और संस्कृति का हनन होने लगा तो कोने-कोने में स्वाधीनता की चिंगारियां उठने लगीं। जो प्रारंभ में किन्हीं शासकों की निजत्व स्वतंत्रता तक सीमित थीं। परन्तु कालान्तर में आते-आते स्वाधीनता का मूल्य राष्ट्रव्यापी होता गया और देश में एकता की लहरें देश को जोड़ती हुई अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भारतीय स्वाधीनता का पहला संग्राम 1857 की क्रांति था। जिसमें देश के अनेक वीरों ने अपनी कुर्बानी व बलिदान देकर पूरा योग दिया। यह क्रांति देश को स्वाधीन तो नहीं कर पाई परन्तु देश को एकता के सूत्र में बांध गई। इस क्रांति ने अनेक राष्ट्रीय कवियों का उत्सर्जन किया। पहले स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् कवियों की कलम अखंड राष्ट्र, स्वाधीन राष्ट्र निर्माण पर चली। जिसमें 20वीं शताब्दी के मुख्य कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, सोहन लाल द्विवेदी, रायकृष्ण दास इत्यादि कवियों ने राष्ट्रीय विचारधारा पर अपनी वाणी प्रदान की। अत: देश में पत्रकारिता व साहित्य के सान्निध्य में अनेक राष्ट्रवादी कवियों का उदय हुआ। देश में अनेक हिन्दी पत्रिकाओं में राष्ट्रव्यापी नयी विचारधारा का जन्म हुआ। जिसमें तत्कालीन समय के कविगण मैथिलीशरण गुप्त, श्यामनारायण पांडेय, माखन लाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद जैसे शीर्ष कवियों ने अखंड राष्ट्र के मूल्य को पहचानते हुए देश की स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेते हुए अपनी वाणी दी। अत: देश की राष्ट्रीय विचारधारा में अनेक कवि हुए जिनमें हम श्यामनारायण पांडेय के काव्य में स्वातन्त्र्यानुराग का अनुशीलन कर रहे हैं।

श्यामनारायण पांडेय के काव्य में स्वातन्त्र्य अनुराग: कवि श्यामनारायण पांडेय का काव्य देश की तत्कालीन क्रांतिकारी परिस्थितियों व जनचेतना का आह्वान है। देश में अंग्रेजों द्वारा अनेक क्रांतिवीरों को सूली पर चढ़ाया जा रहा था। गांधी जी के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन, क्रांतिकारियों की फांसी व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की रंगून से स्वाधीनता की हुंकार ने पांडेय जी को राष्ट्रीय सांस्कृतिक

चेतना से परिचित करवाया। इस संदर्भ में कवि पांडेय लिखते हैं- 'वह ज़माना था स्वतन्त्रता संग्राम का, देश पराधीन था। आज़ादी की लहर चारों ओर थी, एक ही तराना मन को भाता था। वह था वीररस। छायावादी कविताओं का जोर चल रहा था, पर उस समय देश युद्ध के मैदान में कूद चुका था। जब रणभेरी बज रही हो, तब कोयल की कूक और सरिताओं का कल-कल निनाद या प्रेयसी की विरह-व्यथा कानों को अच्छी नहीं लगती। तलवारों की छप-छप और घोड़ों की टाप ही उस समय मन को खींचती है, मेरे साथ यही हुआ।' अत: श्यामनारायण पांडेय की कविता भारतीयों को देशभक्ति, राष्ट्र प्रेम, एकता अखंडता की भावना के सानिध्य में परिचय करवाती हुई हल्दीघाटी, जौहर, शिवाजी जैसी कृतियाँ देश को प्रदान कीं। श्याम नारायण पांडेय के काव्य में भारतीय संस्कृति, भारतीय जाति के प्रति एकता अखंडता की निष्ठा भावना और कर्तव्य परायण का संदेश निहित है। इस संदर्भ में कृष्णचंद्र पाल लिखते हैं- 'श्यामनारायण पांडेय ने उनके वीरतापूर्ण संघर्ष का चित्रण करके भारतीय जनता में स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और स्वसंस्कृति की रक्षा का पाठ पढ़ाया और इस सबके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने का हौसला पैदा किया। उनका काव्य प्रेरणादायी और सन्देश प्रधान है। उसमें वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता जरूर है, किन्तु वीररस और राष्ट्रीय भावना का ऐसा प्रबल प्रवाह है कि उसे पढ़ने-सुनने वाले की पस्ती-सुस्ती क्षण भर में दूर हो सकती है और उसकी भुजाएँ अपने दुश्मन को ललकारने के लिए तत्काल फड़क सकती हैं। जो कवि अपने सहज-सरल शब्दों से वीरता का जोश पैदा कर दे, देश हित के लिए उत्सर्ग का पाठ पढ़ा दे, राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए उदात्त मूल्यों के प्रति आकर्षण पैदा कर दे और अपनी सांस्कृतिक विरासत को सँजोने के लिए गहरी निष्ठा जगा दे, वह अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद महान और प्रशंसनीय है। इस देश में जब भी अनीति, अत्याचार, नृशंसता और कुशासन का बोलबाला होगा, श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य-ग्रन्थ लोगों में राष्ट्रीयता, सच्चरित्रता और वीरता का भाव भरते रहेंगे। वे नि:सन्देह स्वाधीनता आधुनिक काल के विशिष्ट और अविस्मरणीय कवि हैं।' बीसवीं शती के प्रारम्भ में अनेक राष्ट्रवादी कवियों का उदय हुआ, ज्योति जगाने के लिए अनेक क्रांतिवीरों का बलिदान आत्मोत्सर्ग हेतु वीरों का स्वाभिमान, शौर्य व उत्साह अनेक कवियों का कण्ठाहार बना। श्यामनारायण पांडेय भी इससे वंचित नहीं रहे। उन्होंने इतिहास की वीर गाथाओं को 'वीरभोग्या वसुन्धरा' को चरितार्थ करते हुए स्वाधीनता आंदोलन में हुंकार भरी। वे जनमानस को हुँकार भरते हुए ओजस्वी स्वरों में कहते हैं-

कविता ने मुझको बाँध लिया रंगीन भुजाओं में। रस सरोबार हो गया अहँ रख माँ के पांवों में।
तब से छन्दों में अपनी ही तस्वीर बनाता हूँ। इतिहासों में सोये वीरों को पुन: जगाता हूँ।।

कवि श्यामनारायण पांडेय की कविता इतिहास के वीरों को आह्वान करती हुई देश के भावी वीर जवानों में दौड़ते शोणित में उबाल का कार्य करती है। श्यामनारायण पांडेय ने ऐतिहासिक पौराणिक काव्य को आधार बनाकर काव्य लिखे, जो भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम के वीरों में ओजस्वी वाणी में सजगता के साथ उत्साह पैदा कर रही थी। कवि का राष्ट्रप्रेम जाति धर्म से बहुत ऊँचा और विशाल है, जिसमें राष्ट्रीय समन्वय, एकता और प्रेम का सन्देश निहित है-

क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सबने मिलकर जय किया।
महाजनों ने शिव को अपना, संरक्षक स्वीकार किया।

अत: पांडेय जी किसी जाति या धर्म के कवि नहीं थे। वे सच्चे स्वाभिमानी, राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी विचारधारा के परिपुष्ट कवि हैं। पांडेय जी की कविता तत्कालीन नवजागरण काल के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी जैसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक अनुराग कवियों से परिपुष्ट है। पांडेय जी की कविता में क्रांतिकारी विचारधारा में राष्ट्रप्रेम, एकनिष्ठता, इतिहास वीरों के गान से तत्कालीन युवाओं में शौर्य का संचार और भक्तिभाव के माध्यम से समन्वयशीलता के चित्र उदीयमान होते हैं।

श्यामनारायण पांडेय की रचनाओं का परिचय-पांडेय जी ने कविता का प्रारम्भ तुकबंदियों से किया, जो गाँधी जी के स्वाधीनता आंदोलन की ज्वाला, क्रांतिकारियों व किसानों व आमजन पर अंग्रेजी अत्याचार के ताप से राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना पल्लवित होती गयी। जो राष्ट्रप्रेम की हुंकार भरती हैं, पांडेय जी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1. तुमुल 2. हल्दीघाटी 3. जौहर 4. आरती 5. रूपान्तर 6. जय हनुमान 7. गोरावध 8. शिवाजी 9. बालिवध 10. वशिष्ठ 11. परशुराम।

स्वाधीनता से पूर्व लिखित प्रारम्भिक चार रचनाएँ सेनानियों-क्रांतिवीरों में ऊर्जा का संचार व शौर्य भरने में पूरा दमखम रखती हैं। कवि राष्ट्रप्रेम का उत्साह बड़ी ही ओजस्वी वाणी में क्रांतिवीर शहीदों का स्मरण और उनके पदचिह्नों पर चलने का आह्वान करते हैं-

अपने तन को बरबाद किया, उजड़े घर को आबाद किया।
माता की जय का नाद किया, पर हम सबको आजाद किया।।
रख दिया शीश तलवारों पर, जो कूद पड़े अंगारों पर।
थी एक लगन, था एक ध्येय, सो गये रक्त फुहारों पर।।

1. तुमुल- 'तुमुल' खंडकाव्य प्रारम्भ में 'त्रेता के दो वीर' नाम से लिखा गया था। इसे 1928 में 'तुमुल' नाम से प्रकाशित किया गया। इसमें 19 सर्गों में लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध की पौराणिक कथा को आधार बनाकर भारतीय स्वाधीनता के राष्ट्रीय मूल्यों का भाव जाग्रत किया गया है। इस कथा में केवल सत्य-असत्य या धर्म-अधर्म की विजय मात्र नहीं है। इस काव्य में लोकमंगल राष्ट्र रक्षा के लिए आतातायियों को समूल नष्ट करने की हुंकार स्थापित है। जबकि लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध युद्धरीति से परे मेघनाद को यज्ञ करते समय मार देना धर्म के विरुद्ध भी है। परन्तु सर्वलोक मंगल हेतु अधर्म का नाश सर्वथा उचित बतलाया है।

जो हैं अधर्मी नीच उनको दण्ड देना धर्म है।
दुष्कर्मनिरतों को क्षमा करना महादुष्कर्म है।[i]

अत: कवि क्रांतिकारियों द्वारा क्रूर अंग्रेजी हुक्मरानों को मारना, काकोरी रेल घटना इत्यादि को लोकमंगल, राष्ट्र हित में अधर्म को भी लोकमंगल के समीचीन बतलाता है।

जिस कर्म का परिणाम शुभ हो, वह सनातन धर्म है।
जिस कर्म का फल ही अशुभ हो, वह विश्वनिंद्य अधर्म है।

अत: स्पष्ट है कि पांडेय जी 'तुमुल' में पौराणिक कथा के आधार पर काव्य में भारतीय संघर्षरत सेनानियों को अंग्रेजी अत्याचार उखाड़ फेंकने हेतु प्रतिबद्ध करते हैं।

2. हल्दीघाटी-किसी कवि की अक्षयकीर्ति के लिए एक ही काव्य उसे कालजयी बना देता है। अत: पांडेय जी का 'हल्दीघाटी' (1939) हिन्दी जगत् की शौर्य वीर भावना से परिपूर्ण राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की महान कृति है। इस संदर्भ में कवि लिखते हैं- 'इसके छलकते छंदों में वीरता की गर्जना और भीतर प्रखर राष्ट्रीयता की हुँकार है। 'हल्दीघाटी' ऐतिहासिक गौरव की प्रकाशिका तथा अपने समय के अनेक संघर्षों से प्रवाहित आर्यसंस्कृति की उपासिका है।' इस संदर्भ में मेवाड़ राणाओं की शौर्य वीरता पर हेतराम भार्गव 'हिंदी जुड़वां' लिखते हैं- 'महाराणा प्रताप ने मुगलसत्ता के अधीन होते भारत के डूबते सूर्य को हल्दीघाटी से इतना चमकीला कर दिया कि अकबर का भारत विजयी अभियान धूमिल हो गया।' महाराणा प्रताप ने सर्वस्व बलिदान देकर अनेक आपदाओं और संकटकाल से जूझते हुए स्वाधीनता की ज्योति को प्रज्वलित रखा। अत: जब-जब महाराणा के कानों में मुगलों के अत्याचार से करुण जन पुकार सुनने को मिलती तो राणा तलवार उठा लेते थे।

जब प्रताप सुनता था ऐसी, सदाचार की करुण पुकार।
रण करने के लिए म्यान से, सदा निकल पड़ती थी तलवार।

महाराणा की स्वातन्त्र्य ज्वाला अकबर को कांटे की तरह चुभती थी-

जग के वैभव खेल रहे, मुगलराज थाती पर।
फहर रहा था अकबर का, झंडा नभ की छाती पर।।
यह प्रताप, यह विभव मिला, पर एक मिला था वादी।
रह-रहकर काँटों सी चुभती थी, राणा की आजादी।

अत: महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी में केवल रणकौशल का परिचय ही नहीं दिया बल्कि भारतीय स्वाधीनता की ज्योति को जलाये रखा। जिसमें वीर सेनानी झाला, प्रिय घोड़ा चेतक, हाथी रामप्रसाद ने भी बलिदान कर दिया। कवि इनके वीरव्रत को बड़े ही जोश में लिखता है-

रण बीच चौकड़ी भर-भरकर, चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से, पड़ गया हवा का पाला था।। (चेतक पर)

हल्दीघाटी का युद्ध वीरता से लड़ा गया। अकबर युद्ध जीतकर भी हार गया और प्रताप हारकर भी जीत गए। अत: अकबर प्रताप को अधीन न कर सका। प्रताप जंगलों में चले गये, वहाँ उन्होंने अनेक कष्ट सहे, जिसका वर्णन कवि ने बड़े ही कारुण्य में गाया है।

दो दिन पर मिलती रोटी, वह भी तृण घासों की।
कंकर पत्थर की शय्या, परवाह न की आवासों की।।

जंगलों में भटकते राणा के परिवार व सैन्यजन घास-फूस की रोटी खाते, वह भी दिन में एक बार, इससे बीमारी-लाचारी बढ़ती रही, पर राणा को झुका न सकी। जब प्रताप का बाल पुत्र घास की रोटी पर अपनी व्यथा बतलाता है तो राणा का हृदय द्रवित हो उठा और वह अकबर को संधि पत्र लिखने को उद्यत हुआ। तभी रानी ने रोककर कहा- हे प्रताप, रणकौशल में स्वाधीनता के लिए अनेक वीरों को गंवाया है, कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गयीं, वीर झाला, वीर चेतक, वीर रामप्रसाद ने प्राण गवाएं हैं। मैं उनकी शहीदी व्यर्थ न जाने दूंगी। यदि आप थक गये हों तो-

थक गया समर से तो अब, रक्षा का भार मुझे दें।
मैं रणचण्डी सी बन जाऊँ, अपनी तलवार मुझे दें।

यह हुँकार सुनकर राणा विस्मृत हुआ और पुनः स्वातन्त्र्य की ज्वाला लिए उद्यत हो उठा।

स्वतंत्रता की कवच पहन, विश्वास जमा कर भाला में।
कूद प्रताप राणा प्रताप, उस समर वह्नि की ज्वाला में।

स्पष्ट है कि 'हल्दीघाटी' वीर रसात्मक महाकाव्य देशप्रेम व स्वातन्त्र्य की ज्वाला जाग्रत करती हुई जनमानस में स्वाधीन चेतना का प्रसार व पराधीनता के विरुद्ध अदम्य साहस के साथ अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने में सफल रही है। महाराणा प्रताप किसी जाति या धर्म के नायक नहीं थे। वे देश की स्वाधीन चेतना के प्रतिमान थे। जो तत्कालीन जनचेतना के लिए महत्वपूर्ण, प्रभावशाली व प्रेरणादायी उद्घोषक था।

3. जौहर-भारतीय स्त्री के स्वाभिमान और सौन्दर्य वस्त्र और आभूषण ही नहीं हैं बल्कि स्त्रियों ने अपने सतीत्व की पवित्रता से अपने स्वाभिमान और सौन्दर्य को रवि की रश्मियों से भी अधिक उजला बना दिया। पांडेय जी की 'जौहर' (1944) कृति राजपूताने की स्त्रियों द्वारा सतीत्व के लिए जौहर करने की मर्यादा, पवित्रता और राष्ट्र स्वाभिमान की गौरव गाथा है। इस काव्य में अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध राणा रत्नसेन के युद्ध के पश्चात् खिलजी के नापाक इरादों को निष्फल करने हेतु हजारों स्त्रियों द्वारा 'जौहर' की गौरव गाथा इक्कीस चिनगारियाँ (सर्गों) में उकेरी गयी है। इस कथा को पुजारी और पथिक के मध्य संवाद के रूप में उकेरा गया है। कवि ने जौहर स्थल को गंगासागर, काशी, रामेश्वरम जैसे तीर्थों से बड़ा तीर्थ स्थल बतलाया है।

मुझे न जाना गंगासागर और न रामेश्वर काशी।
तीर्थराज चितौड़ देखने को, मेरी आँखें प्यासी।।
सुंदरियों ने जहाँ देश हित, जौहर व्रत करना सीखा।
स्वतंत्रता के लिए जहाँ, बच्चों ने भी मरना सीखा।

'जौहर' की कारुण्य कथा बहुत ही मार्मिक है। इसमें कवि ने देश धर्म की आन-बान व मर्यादा को इतिहास पटल पर उकेरते हुए भारतीय नारी की गरिमा को बढ़ाया है। भारतीय नारी के वीरव्रत का ऐसा उदाहरण अन्य कहीं भी नहीं मिलता। तत्कालीन अंग्रेजी सत्ता के बढ़ते अत्याचार को नष्ट करने में जौहर की ज्वाला स्वाधीनता संग्राम में भी प्रज्वलित रही और नारीशक्ति को सशक्त व प्रतिबद्ध बनाती हुई राष्ट्र रक्षा के लिए कटिबद्ध करती है।

4. आरती- 'आरती' काव्य संग्रह (1946) की कविताएँ एक ओर विविध परिदृश्यों से परिपूरित विषयगत विविधता में सामाजिक जीवन संघर्ष से व्यंजित हैं। वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना व स्वाभिमान के ओजस्वी स्वर में देशोद्धार, आत्मबलिदान, युद्धोत्साह और देशप्रेम को भारतीय समाज से परिचित करवाती हैं। कवि किसानों की दुर्दशा पर तलवार तक उठाने को प्रतिबद्ध हो उठता है।

बरस रहे हों आसमान से, दीन किसानों पर अंगार।
जहाँ लोग भूखे मरते हों और मचा हो हाहाकार।।
असहायों की गर्दन पर, दुश्मन की फिरती हो तलवार।

बलिवेदी पर चढ़े देश का भी, कुछ हो जाए उद्धार।।

कवि स्वाधीनता की ज्वाला भारत माता की मुक्ति हेतु सेनानियों, नवयुवकों में उत्साह-हुँकार भरता है।

कौन है उठाता आँख, क्रोध से तुम्हारी ओर।
अटक रहे हो क्यों, झपट उठ ताल दो।।
भर लो असीम तेज, भीम सा अकूत बल।
तन से अधीरता, सुभाष सा निकाल दो।।

अत: आरती काव्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ देशप्रेम से ओतप्रोत हैं।

निष्कर्ष- निष्कर्ष से स्पष्ट है कि श्यामनारायण पांडेय स्वातन्त्र्य समर और राष्ट्रीय चेतना के शौर्य और उदात्त भावना के वीर कवि हैं। उनके देश की स्वाधीनता से पूर्व लिखित काव्यों ने तत्कालीन जनमानस की शिराओं में सुप्त शोणित को उबालने का काम किया। अत: श्यामनारायण पांडेय तत्कालीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के कवियों में उदात्त व प्रखर हुंकार भरने वाले वीर भावना के समर्थ व समृद्ध कवि हैं। पांडेय जी की वीर काव्य भावना देश की संस्कृति का गौरव है। जो अखण्ड भारतवर्ष के गौरव की प्रतीक बनकर चिरकाल तक शौर्य वीरता की हुंकार भरती रहेगी।

संदर्भ सूची:

1. कृष्णचंद्र पाल : भारतीय साहित्य के निर्माता : श्यामनारायण पांडेय (साहित्य अकादमी दिल्ली, 2000) भूमिका।
2. कृष्णचंद्र पाल : भारतीय साहित्य के निर्माता : श्यामनारायण पांडेय (साहित्य अकादमी दिल्ली, 2000) पृष्ठ: 8-9।
3. कृष्णचंद्र पाल : भारतीय साहित्य के निर्माता : श्यामनारायण पांडेय (साहित्य अकादमी दिल्ली, 2000) पृष्ठ: 32।
4. श्यामनारायण पांडेय : आरती (विविध रूप रस गंध के कलित कुसुमों की एक चयनिका) : आनंद पुस्तक भवन काशी, वि. सं. 2003, पृष्ठ सं. 83।
5. श्यामनारायण पांडेय : आरती (विविध रूप रस गंध के कलित कुसुमों की एक चयनिका) : आनंद पुस्तक भवन काशी, वि. सं. 2003, पृष्ठ सं. 83।
6. कृष्णचंद्र पाल : भारतीय साहित्य के निर्माता : श्यामनारायण पांडेय (साहित्य अकादमी दिल्ली, 2000) पृष्ठ: 39।
7. कृष्णचंद्र पाल : भारतीय साहित्य के निर्माता : श्यामनारायण पांडेय (साहित्य अकादमी दिल्ली, 2000) पृष्ठ: 39।
8. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
9. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
10. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
11. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
12. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
13. श्यामनारायण पांडेय वेब पेज कविता कोष से http://kavitakosh.org//kk/हल्दीघाटी/श्यामनारायणपाण्डेय।
14. श्यामनारायण पांडेय : जौहर (वीर करुण रस सिक्त अद्वितीय महाकाव्य) - पहली चिंगारी से : सरस्वती मंदिर काशी, प्रथम संस्करण - वि. सं. 2002, पृष्ठ: 3
15. श्यामनारायण पांडेय : आरती (विविध रूप रस गंध के कलित कुसुमों की एक चयनिका) : आनंद पुस्तक भवन काशी, वि. सं. 2003, पृष्ठ सं. 90।
16. श्यामनारायण पांडेय : आरती (विविध रूप रस गंध के कलित कुसुमों की एक चयनिका) : आनंद पुस्तक भवन काशी, वि. सं. 2003, पृष्ठ सं. 79।

द्वारा-
104 हिंदी भवन, नजदीक ब्रह्म कुमारी, जीएस स्कूल के पीछे,
शहर - जीरकपुर, जिला एसएएस नगर (पंजाब)-140603
9829960882

मध्यकालीन भारत के गुजराती संत साहित्य का अनुशीलन

-डॉ. हरिराम भार्गव

भारतीय साहित्य व संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने में संतों का योगदान अपूर्व है। अत: भावात्मक एकता और समन्वय स्थापित करते हुए संतों ने साहित्य द्वारा अलौकिकता के पटल पर सामाजिक व सांस्कृतिक महत्ता प्रदान की है। संतों का यह सांस्कृतिक आंदोलन अप्रतिम योगदान है। भारतीय धर्म संस्कृति की समन्वयशीलता का सबसे बड़ा उदाहरण उत्तर में गुरु ग्रंथ साहिब है। दक्षिण में अलवार संत, नयनार संत और लिंगायत संतों का योगदान है। भारत के कोने-कोने में संतों की वाणी समस्त जन के कंठाहार है। गुजराती व मराठी साहित्य ने हिंदी भाषा को समृद्ध साहित्य का भंडार प्रदान किया है। गुजराती व मराठी के प्राचीन साहित्य में नाथ संप्रदाय, महानुभाव पंथ, बारकरी संप्रदाय, श्रीदत्त संप्रदाय, रामदासी संप्रदाय, आनंद संप्रदाय इत्यादि अध्यात्म में भक्ति प्रचारकों और समर्थकों से पुष्ट रहा है। इन संतों-कवियों ने अपने काव्य में भारतीय साहित्य और संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी है। अत: गुजरात की भूमि पर अनेक संतों और संप्रदायों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

भारतीय इतिहास के पटल पर हम देखते हैं कि पश्चिमी आक्रांताओं ने भारत पर हमले हेतु गुजरात से लेकर पंजाब के खैबर दर्रे तक प्रवेश मार्ग बना रखे थे। बाहरी आक्रांताओं के आक्रमण से बार-बार जूझती जनता में अपने शासकों के प्रति रक्षार्थ की भावना कम होने लगी। जबकि उनका ईश्वर की ओर ध्यान अर्थात् अनेक संकटों से बचने में अपने इष्ट की ओर जाना ही भक्ति आंदोलन का उदय है। गुजरात पर कई आक्रांताओं के बड़े हमले हो चुके थे और गुजरात की जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। तत्कालीन शासकों और क्षत्रिय राजाओं द्वारा भी जनता पीड़ित थी। अत: जब जनमानस पीड़ित होता है, तो वह अपने आराध्य ईश्वर की शरण लेता है। अत: मध्यकालीन गुजरात में जनमानस के शरणार्थ अनेक संप्रदाय पल्लवित हुए, जिनमें निम्नलिखित संप्रदायों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है: शिव-शक्ति संप्रदाय और गोरखनाथ, महानुभाव पंथ संप्रदाय, रामानंद संप्रदाय, कबीर पंथ, दादू दयाल, प्रणामी संप्रदाय, सूफी संप्रदाय, रामसनेही संप्रदाय इत्यादि। ये संप्रदाय जनमानस की पीड़ा को शांत करते हुए उन्हें भक्ति और ज्ञान की ओर ले गए।

शिव-शक्ति साधना और गोरखनाथ-मध्यकालीन धर्म साधना में गोरखनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है। पंजाब में बालानाथ का टीला या जालंधर में नाथों का विशाल डेरा है, जहाँ से गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ ने नाथ संप्रदाय की प्राण-प्रतिष्ठा की। मत्स्येंद्रनाथ गुजरात में नाथ संप्रदाय का प्रचार करते हुए पधारे। गुजरात में कच्छ और गिरनार नाथों की साधना के केंद्र हैं और गुजरात के तीन बड़े शिवालयों में साधना नाथ संप्रदाय के अनुसार ही होती है। इससे हम समझ सकते हैं कि गुजरात में नाथ संप्रदाय का प्रचार-प्रसार रहा है। अत: नाथों के तत्कालीन गुरु गोरखनाथ, मत्स्येंद्रनाथ व कालांतर में अनेक नाथ शिष्यों का भी प्रचार-प्रसार हेतु गुजरात में जाना बताया गया है।

शिव साधना-सगुण-निर्गुण उपासक साधना के प्रारंभ में शैव-वैष्णव उपासकों में वैमनस्य की भावनाएँ देखी गई थीं, परंतु मध्यकालीन युग में शैव-वैष्णव का सामंजस्य करते हुए नरसी मेहता जैसे संत, जो शिव उपासक थे, कृष्ण या वैष्णव समन्वय के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने शिव और वैष्णव की एकरूपता स्वीकार करते हुए उपासना की है।

शक्ति साधना-गुजरात में शाक्त के प्रमुख तीन पीठ स्थापित हैं, जिनमें उत्तर गुजरात का बहुचरा पीठ, आरापुर का अंबिका पीठ और तीसरा चंपानेर के पास पावागढ़; ये तीन शक्तिपीठ स्थापित हैं। इनमें आरापुर के अंबिका पीठ में श्री कृष्ण का मुंडन हुआ बताया जाता है। गुजरात में नवदुर्गा उपासना और साधना पर गरवाकार भानराम और नाथमवान ने देवी की उपासना में गरबियाँ लिखीं, जो हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

महानुभाव या अच्युत संप्रदाय-महाकवि संत महात्मा चक्रधर अच्युत संप्रदाय के प्रवर्तक थे। महानुभाव या अच्युत संप्रदाय का उदय महाराष्ट्र से हुआ, जो कालांतर में फैलता हुआ उत्तर भारत तक पहुँच गया। यह महाराष्ट्र में 'महानुभाव पंथ', गुजरात में 'अच्युत संप्रदाय' और पंजाब में 'जय कृष्ण पंथ' कहलाता है। गुजरात में अच्युत संप्रदाय प्रभावशाली रहा, वहीं इस संप्रदाय में कुछेक उपासक आज भी मिलते हैं। इस संप्रदाय में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। नाथ साहित्य मत पर चलने वाला यह संप्रदाय भक्ति के उपासक का केंद्र कृष्ण को मानता है। भक्ति और ज्ञान पर अधिक बल होने की वजह से यह संप्रदाय लिंगायत संप्रदाय के अधिक निकट भी है।

रामानंद संप्रदाय–स्वामी रामानंद ने रामानंद संप्रदाय का प्रवर्तन किया। यह 'रामावत संप्रदाय' या 'रामानंदी संप्रदाय' नाम से भी प्रचलित है। इस संप्रदाय के अनुयायी अवधूत कहलाते हैं। रामानंद के बारह शिष्य निर्गुण साधना के अधिकारी रहे, अत: मूर्ति पूजा से परे ईश्वर के अलौकिक रूप में परमात्मा को देखना और उनका भजन करना इस संप्रदाय का नियम है। रामानंद के शिष्यों द्वारा अलौकिक रूप में राम का प्रचार गुजरात के कोने-कोने में किया गया। गुजरात के गिरनार पर्वत और राजस्थान के आबू पर्वत पर इस संप्रदाय का प्रभाव देखने को मिलता है।

कबीर पंथ–कबीरदास जी अपने गुरु रामानंद के आदेश पर ही गुजरात के नर्मदा तट पर आए। गुजरात के नर्मदा तट पर गुजराती भाषा में कबीर जी की वाणी के शब्द प्राप्त होते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार कबीर गुजरात के सौराष्ट्र में गए थे। कबीर जी द्वारा वहाँ धर्म प्रचार का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त तत्कालीन आडंबरों के विरुद्ध समता, समानता और भक्ति के अंतर्निहित ज्ञान का प्रचार था, जो बहुत प्रभावशाली रहा। इसके फलस्वरूप गुजरात में कबीर के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई। गुजरात के कोने-कोने में कबीर की महिमा गाई जाने लगी। आज गुजरात में कबीर दास जी के अनेक मंदिर, आश्रम व मठ होना इस बात का संकेत है कि कबीर पंथ तत्कालीन समय में एक बहुत बड़ा संप्रदाय रहा है। कबीर की निर्गुण और सगुण साधना समयाकालीन परिस्थितियों के अनुसार बढ़ती चली गई और कबीर पंथ दो भागों में विभाजित हुआ: राम कबीरिया पंथ और संत कबीरिया पंथ।

राम कबीरिया पंथ–इसमें कबीर को राम का अवतार माना गया है। इस पंथ में सिर पर टोपी और भगवा वस्त्र पहनने की विचारधारा है। इसके प्रवर्तक पद्मनाभ को माना जाता है। इस पंथ के लोग 'रामकबीर' कहकर गुणगान करते हैं। इसमें छठी पीढ़ी में भानसाहब का नाम उल्लेखनीय है, जो गुजरात के प्रसिद्ध संत थे।

संत कबीरिया पंथ–इसमें राम की निर्गुण साधना की जाती है। इस पंथ का आश्रम जामनगर में स्थापित है।

कबीर दास का निर्वाण साहब पंथ–यह परंपरा भी गुजरात में प्रचलित है। इसमें सभी संत अपने नाम के आगे 'साहब' शब्द लगते हैं। संत दादू दयाल के संप्रदाय का दूसरा नाम 'परब्रह्म संप्रदाय' भी है। संत दादू ने कबीर की भाँति पर्यटन करते हुए धर्म प्रचार किया। दादू संप्रदाय के देश भर में अनेक मठ और आश्रम हैं। इनकी प्रमुख गद्दी नारायणा (राजस्थान) में स्थापित है, जहाँ दादू की खड़ाऊं की पूजा की जाती है। दादूपंथी साहित्य हिंदी के अतिरिक्त गुजराती भाषा में भी मिलता है।

प्रणामी संप्रदाय–प्रणामी संप्रदाय का प्रभाव गुजरात में व्यापक रहा। यह एकेश्वरवाद पर बल देता है। इस संप्रदाय की स्थापना देवचंद्र द्वारा की गई थी। जामनगर में निजानंद का नवतनपुरी धाम इस संप्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल है। इसे 'कृष्ण प्रणामी धर्म' भी कहते हैं। इस पंथ में सभी धर्म ग्रंथों के भेद खुले हैं, अर्थात् हिंदू, मुस्लिम, सिख व ईसाई सभी धर्मों को समान दर्जा दिया जाता है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बाल रूप (11 साल 52 दिन) की पूजा होती है।

सूफी संप्रदाय–भारतवर्ष में इस्लाम का प्रवेश आठवीं सदी से ही प्रारंभ हो गया था । अत: पंजाब वैसे तो इस्लाम का द्वार बन गया। चौदहवीं शताब्दी में भारत में इस्लामी विद्या के अनेक केंद्र खुल चुके थे। इस्लाम का बड़े स्तर पर प्रचार प्रसार हो रहा था, इसी इस्लामी शरीयत के अंतर्गत भारत में सूफी संतों ने प्रवेश किया। सूफी संतों ने केवल इस्लाम को ही भारत में प्रचार-प्रसार का माध्यम नहीं बनाया बल्कि सूफी संतों ने भारत को अरबी व फारसी को भारतीय भाषाओं से समन्वय, जाति व धर्म वर्ग मतभेद दूर कर समता- समानता की शिक्षा और तत्कालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वास को दूर करते हुए जन मानस को लौकिकता के धरातल पर अलौकिकता के दर्शन करवाते हुए वहीं भारत में व्याप्त मूर्ति पूजा, विविध देव पूजा की जगह एकेश्वरवाद पर जोर दिया । अत: सूफी संतों ने भारत को विविध संस्कृति और शिक्षा से जोड़ा अत: सूफी संत इस्लामी शासकों की तरह इस्लाम के कट्टरपंथी नहीं कहे जा सकते। इनका मूल उद्देश्य मानव जाति का जनकल्याण रहा हमारे भारत में अनेक दक्खिणी - गुजरती सूफी संतों ने भक्ति व ज्ञान का परिचय करवाते हुए अनेक साहित्य का विपुल भंडार प्रदान किया है। जिनमें दक्खिणी सूफी संतों में प्रमुखत चार सूफी संप्रदाय चिश्ती संप्रदाय, सुहरावरदी संप्रदाय, कादरी संप्रदाय, सत्तारी संप्रदाय और नक्शबदी संप्रदाय प्रसिद्ध थे। सूफी संतों ने जब भारत में प्रवेश किया तब उनका केंद्र केवल दिल्ली या अजमेर तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उन्होंने दक्षिण भारत में भी अपना प्रचार प्रसार किया । अत: सूफी साहित्य में दक्षिण के मध्यकाल में अनेक महान कवि प्रदान किए जिसमें मुहम्मद कुली, अब्दुल्ला, गनी, अमीन, गवासी, मुकिमी, अब्दुल, खुशनूद, रुस्तमी, निसाती जैसे सूफी कवियों का साहित्य दक्षिण हिंदी में मिलता है। अत: गुजरात के संदर्भ में सूफी साहित्य सूफी संतों में सत्तारी संप्रदाय के बदरुद्दीन का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है।

रामस्नेही संप्रदाय–रामसनेही संप्रदाय का प्रमुख केंद्र राजस्थान ही रहा पर रामस्नेही संप्रदाय का प्रभाव गुजरात में भी देखा जाता है। यह संप्रदाय मुसलमानी विचारधारा से अधिक प्रभावित रहा है। इस संप्रदाय में मूर्ति पूजा नहीं होती बल्कि इस्लामी शरीयत में पाँच बार नमाज की होती जाती है वैसे ही इस संप्रदाय में पाँच बार निराकार ईश्वर की उपासना की जाती है। इस संप्रदाय में जाति-पाति भेद

से परे यह समुदाय समानता, समता, सदाचार का पाठ पढ़ाता है। इस संप्रदाय के लोग माथे पर तिलक रखते हैं, जीव हत्या को इतना भयंकर पाप मानते हैं कि वर्षा काल में भी अपने घर से बाहर नहीं निकलते क्योंकि वर्षा काल में अधिकतर रेंगने वाले कीड़े पैरों की तरह कुचले जाने का डर रहता है। यह संप्रदाय मानव कल्याण के साथ-साथ जीवों और प्राणियों के कल्याण पर भी मानव जाति को शिक्षा देता है। अत: इस पंथ में 40 दिन तक दीक्षा प्राप्त कर प्रवेश किया जाता है और रामस्नेही संप्रदाय गुजरात के अहमदाबाद और बड़ोदरा में पंथ स्थापित हैं। अत: यह संप्रदाय राम के अलौकिक स्वरूप में मानव जाति को सदाचार की शिक्षा देता है।

निष्कर्ष में स्पष्ट है कि हमारा भारत देश विविध संस्कृतियों का देश रहा है हमारे देश के कोने-कोने में अनेक संतों ने अपने वाणी के माध्यम से हमारी देश की संस्कृति और साहित्य को जीवित रखा है। अत: गुजरात के संदर्भ में हमारे देश में अनेक पंथ और संप्रदाय स्थापित है। जिन्होंने अपने तत्कालीन समय में देश पर आयी बाहरी विपदाओं को जनमानस से दूर रखते हुए भक्ति और ज्ञान का पाठ पढ़ाया क्योंकि तत्कालीन मध्यकालीन भारत में अनेक विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण हुए और लूटपाट हुई ऐसे समय में हताश और निराश जनता का ध्यान ईश्वर भक्ति की ओर गया और उन्हें भारतीय संतो ज्ञान व भक्ति का पाठ पढ़ाते हुए आम जन को अपने इष्ट को प्राप्त कर आत्मिक सुख की तृप्ति करवाते हुए जनता का ध्यान ईश्वर भक्ति की ओर लगाया ।

निष्कर्ष :

1. गुजरात के संतों को हिंदी की देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाल पुस्तकालय मथुरा (1967) पृष्ठ 58
2. गुजरात के संतों को हिंदी की देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाल पुस्तकालय मथुरा (1967) पृष्ठ 59
3. गुजरात के संतों को हिंदी की देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाल पुस्तकालय मथुरा (1967) पृष्ठ 61
4. गुजरात के संतों को हिंदी की देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाल पुस्तकालय मथुरा (1967) पृष्ठ 67
5. गुजरात के संतों को हिंदी की देन-डॉ. रामकुमार गुप्त, जवाल पुस्तकालय मथुरा (1967) पृष्ठ 69
6. दक्खिणी हिंदी काव्य धारा-महापंडित राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (1959) पृष्ठ 80
7. सूफी संतों के जीवन चरित्र-गलीफ बरनी, साधन प्रकाशन मथुरा (1959) पृष्ठ 8, 158, 208
8. दक्खिणी हिंदी काव्य धारा-महापंडित राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (1959) पृष्ठ 8
9. हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, कमल प्रकाशन नई दिल्ली (2002)
10. हिंदी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास- डॉ कुसुम राय, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी (2008), पृष्ठ 384

-डॉ. हरिराम भार्गव 'हिंदी जुड़वाँ'
104, हिंदी भवन, नज़दीक ब्रह्म कुमारी, जीएस स्कूल के पीछे,
शहर-ज़ीरकपुर, ज़िला एसएएस नगर (पंजाब)-140603
Email : hindujudwaan@gmail.com Mob. : 9829960882

वेदकालीन धर्म एवं समाज का स्वरूप

-डॉ. दीपलता

वेद समस्त सृष्टि के सर्वस्व हैं। विश्व कल्याणार्थ चार वेद हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। वेद मानव जाति सहित समस्त प्राणी जगत् को सुखमय बनाने का एकमात्र साधन है अर्थात् वेद ज्ञान से ही मनुष्य सुख और शांति एवं लोक-परलोक को सुखी करता है। लोक-परलोक से संबंधित समस्त क्रिया-कलापों का समावेश वेद में मिलता है। सृष्टि कल्याणार्थ ऐसा कोई विषय नहीं है जो वेद में उपलब्ध नहीं है। वेद ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जो अज्ञान, निराशा, अनाचार और आधि-व्याधि से मुक्त करके मानव जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में उपलब्ध ऋषि-मुनियों द्वारा दिया गया ज्ञान मानव जाति सहित समस्त सृष्टि के लिए कल्याणकारी है। ऋग्वेद विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है। इसमें समस्त सृष्टि का प्राचीनतम चित्र पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसकी ऋचाओं में वैदिक युग की सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण रूप उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के विचारों का तथा उनकी प्रगति का विस्तृत वर्णन है।

वेदकालीन धर्म

वेद धर्म का मूल है। प्राय: सभी भारतीय विचारक अति प्राचीन काल से वेदों को अपने धर्म का मूल मानते रहे हैं। आज हिन्दुओं के धार्मिक स्वरूप में अनेक विभिन्नताएँ हैं, कुछ ईश्वर के निराकार रूप की उपासना करते हैं और कुछ उसका साकार रूप भी मानकर उसकी मूर्तियों की पूजा करते हैं, कुछ अनेक देवताओं को मानते हैं और कुछ एक देव ईश्वर को मानकर उसमें इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि विभिन्न दैवी शक्तियों की कल्पना करते हैं। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराएँ अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद आदि सभी सिद्धान्त वेदों को ही आधार मानकर प्रतिपादित किए जाते हैं। ऋग्वेद का मुख्य धार्मिक रूप देवताओं की उपासना करना है। यह उपासना अनेक देवताओं के रूप में या एक महान् देवता के रूप में हो सकती है।

ऋग्वेद में बाह्य रूप से बहुदेवतावाद की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। प्रधान रूप से 33 देवताओं की स्तुतियाँ ऋग्वेद में मिलती हैं। उपासना करने पर ये देवता मनुष्यों को विविध प्रकार की शक्तियाँ, सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं। ये देवता तीन वर्गों में विभक्त किए गए हैं–स्वर्ग स्थानीय देवता, अन्तरिक्ष स्थानीय देवता और भूस्थानीय देवता।

वैदिक भाष्यकारों के अनुसार पुरोहित यज्ञ किया करते थे और मन्त्रों का पाठ करते हुए देवताओं का आवाहन करते थे। प्राय: सभी मन्त्र देवतापरक हैं और इनका विनियोग यज्ञों में किया जाता है। ऋग्वैदिक काल में ये देवता प्राकृतिक शक्तियों के या ईश्वर की दैवी शक्तियों और गुणों के प्रतीक थे। अनेक स्थानों पर मूर्त रूप वर्णित होने पर भी उनका स्वरूप अमूर्त था। कालान्तर में ये पौराणिक देवता बन गए और इनके मूर्त रूप की कल्पना की गई। देवताओं का राजा इन्द्र हुआ, जिसका निवास स्वर्ग में था। इन देवताओं में लोकोत्तर शक्तियों की भी कल्पना की गई।

ऋग्वेद में यद्यपि अनेक देवताओं की उपासना है तथापि वैदिक मन्त्रों का यह बाह्य अर्थ ही है। वेदों का आन्तरिक सन्देश मूल रूप में एक ही परम शक्ति के स्वरूप को उद्घाटित करना है। वैदिक ऋषियों ने वस्तुत: एक ही चेतन शक्ति की उपासना की थी, जो इस विश्व का मूल है। यह चेतना शक्ति ही परमात्मा, ईश्वर, पुरुष या ब्रह्म है। विभिन्न देवता उसी महान् शक्ति की विविध शक्तियों और गुणों को प्रकट करते हैं। इन गुणों के दैवी या लोकोत्तर होने के कारण इनको देवता की संज्ञा दी गई है। वास्तव में इन देवता वाचक शब्दों का अर्थ ब्रह्मपरक ही है। ईश्वर के एकत्व की और उसमें देवता रूप अनेकत्व की स्थापना ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में की गई है। यथा–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निराहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः।।

उस परमेश्वर के एक होते हुए भी विद्वान् उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। वे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, अग्नि, यम और मातरिश्वा।

य एक इत् तमष्टुहि कृष्टीनां विचर्षिणः।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।।[3]

वह परमात्मा एक होता हुआ भी विद्वानों द्वारा अनेक नामों से स्तुति किया जाता है। वह धर्मरूप यज्ञों का स्वामी हुआ। यास्क ने भी सभी देवताओं की आत्मा को एक कहा है–

महाभाग्याद देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।[4]

इन सभी देवताओं की आत्मा एक ही है और उसकी अनेक प्रकार से स्तुति की जाती है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में पुरुष परमात्मा के असंख्य सिर, हाथ, पैर, आँख आदि बताए गए हैं और वह समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके स्थित है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 90वें इस पुरुष सूक्त में परम पुरुष में सभी शक्तियों को व्याप्त करके एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की गई है। ऋषियों ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों का दर्शन और अनुभव किया, उन्होंने उनको देवता नाम से अभिहित किया। इन देवताओं में उन्होंने एक चेतन अधिष्ठात्री शक्ति के दर्शन किए। वही चेतन शक्ति सृष्टि का कर्त्ता, नियन्ता और संहर्ता तथा देवताओं को भी शक्ति प्रदान करता है। वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक शक्ति है, जो प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय नहीं है।

प्रायः सभी प्राचीन ऋषियों ने वेदों की व्याख्या करते हुए उनमें एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने विभिन्न देवताओं को उसकी विभिन्न शक्तियाँ तथा गुण माना। आधुनिक युग में राजा राममोहन राय ने भी वैदिक देवताओं को प्रतीकात्मक गुण माना। ऋषि दयानन्द ने वेद मन्त्रों की व्याख्या के आधार पर प्रबल प्रमाणों द्वारा वेदों में एक ही ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित किया।

वैदिक धर्म को यज्ञों का धर्म कहा जाता है। प्रायः सभी विद्वानों की मान्यता है कि वेदों का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण को 'याज्ञिक भाष्यकार' का नाम दिया। सामान्यतः अग्नि जलाकर हवन करने और उसमें आहुतियाँ देने को यज्ञ कहा गया है, परन्तु यज्ञ के और भी अर्थ हैं। ब्रह्म यज्ञ, द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, दान यज्ञ, ज्ञान यज्ञ आदि का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है। भगवान् को यज्ञ स्वरूप कहकर उसे यज्ञेश्वर, यज्ञ पुरुष आदि नामों से अभिहित किया गया है। अनेक ऋषियों ने यज्ञ का अर्थ परोपकार किया है। यज्ञ शब्द का कुछ भी अर्थ क्यों न हो, ऋग्वेद उसका समर्थन करता है।

दार्शनिक चिन्तन ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। आत्मा-परमात्मा, सृष्टि-उत्पत्ति, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयों का ऋग्वेद में गहन चिन्तन किया गया है। वैदिक धर्म में सृष्टि की रचना एवं विश्व के संचालन के लिए ईश्वर, जीव एवं प्रकृति इन तीन तत्वों की सत्ता स्वीकार की गई है। जीव और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा ईश्वर इसका नियामक और संचालक है। प्रकृति के द्वारा जीव बंधा रहता है तथा जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। तत्त्व ज्ञान होने से वह इन सम्बन्धों से छूट जाता है और मोक्ष के परम आनन्द को प्राप्त करता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इस त्रैतवाद को पुष्ट किया गया है। निम्न मन्त्र में त्रैतवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।[5]

सुन्दर पंखों वाले समान आयु वाले दो पक्षी मित्र समान रूप से विश्व का आलिंगन कर रहे हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट पिप्पल का आस्वादन कर रहा है। दूसरा भोग न करता हुआ भी आनन्द प्राप्त करता है। इसमें विश्व प्रकृति है तथा पिप्पल उसके भोग्य पदार्थ हैं। आस्वादन करने वाला पक्षी जीव है तथा भोग न करने वाला दूसरा पक्षी ईश्वर है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।[6]

यहाँ 'विष्णु' परमात्मा के लिए, 'सूरयः' जीवों के लिए और 'दिवीव चक्षुः' प्रकृति रूप सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में 6-7 सूक्त हैं। इनमें नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त और पुरुष सूक्त बहुत प्रसिद्ध हैं। नासदीय सूक्त (10-129) में सृष्टि उत्पत्ति से पहले की अवस्था का वर्णन करके उसकी रचना का क्रम बताया गया है। उस समय न सत् था, न असत् था, न लोक थे, न आकाश था, न गति थी, न स्थान था, न जन्म था, न मृत्यु थी और न अमृत था, न दिन था न रात थी; वही एकमात्र परमेष्ठी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अन्तश्चेतना के साथ निर्वात अवस्था में शान्त रूप में वर्तमान था। उसमें इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ और सृष्टि का बीज उत्पन्न हुआ। वह स्वयं कहाँ से उत्पन्न हुआ, यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई, देवता सृष्टि से पहले हुए या बाद में, कौन जानता है। यह परमेश्वर ही उस सृष्टि का अध्यक्ष है, उसी को जानना चाहिए।

हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121) में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। सबसे पहले यह हिरण्यगर्भ परमात्मा ही था। वह उत्पन्न हुए सभी पदार्थों का अधिपति था। उसी ने पृथ्वी लोक और द्युलोक को धारण किया हुआ है। वही आत्मा का आविर्भाव करने वाला है और मृत्यु का देने वाला है। सब देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी सुख स्वरूप हिरण्यगर्भ परमेश्वर की हम उपासना करें।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (10.90) में पुरुष रूप परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने के साथ-साथ सृष्टि उत्पत्ति के रूप को भी बताया गया है। जो कुछ वर्तमान में है, भूतकाल में था और भविष्य में होगा वह पुरुष ही है। उस पुरुष से विराट् और उससे अधिपुरुष की उत्पत्ति हुई। उसी से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई। ऋग्वेद में मृत्यु के बाद जीव की गति तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। मृत्यु के बाद जीव के मार्ग का निदर्शन यम करता है। यम जीव को उस मार्ग से ले जाता है जहाँ से उसके पूर्वज गए थे। यह स्थान आनन्द से परिपूर्ण है–

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।।

जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गए हैं, पूर्वकाल में बने हुए मार्गों से शीघ्र जाओ और जाकर अन्न से तृप्त होने वाले दीप्तिमान शरीर वाले दोनों यम और वरुण देवों की ओर देखो।

ऋग्वेद के इन्हीं मन्त्रों के आधार पर पुराणों में पितृलोक की कल्पना की गई। यम को मृत्यु का देवता कहा गया है। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म होता है, ऋग्वेद में इसकी पुष्टि की गई है। निम्नलिखित मन्त्र से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की स्पष्ट पुष्टि होती है–

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति।।

वह परमेश्वर पुनः प्राणों की प्रतिष्ठा करता है। पुनः चक्षु आदि इन्द्रियों को, प्राणों को और भोगों को धारण कराता है। हे परमेश्वर! हम आपकी कृपा से उदय होते हुए सूर्य को दीर्घकाल तक देखते रहें। सबको प्राण देने वाले हे ईश्वर! आप हमें सुखी रखिए। हमारा कल्याण हो।

ऋग्वेद में मोक्ष को सबसे अधिक आनन्द का हेतु कहा गया है। यह सत्य, श्रद्धा, तपस्या और आध्यात्मिक ज्ञान से प्राप्त होता है। ज्ञान रूप ज्योति से मोक्ष के मार्ग के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। ऋग्वेद में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर मुझे उस परम मोक्ष लोक में स्थान प्रदान करो जहाँ निरन्तर ज्योति और परम आनन्द रहता है (ऋ0 9.113.7)। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में मोक्ष की कामना की गई है–

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमंगिरसो वा अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।[12]

जिन्होंने यज्ञों के द्वारा और दान के द्वारा मुक्ति को प्राप्त किया है, वे इन्द्र की मित्रता को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। उनका कल्याण हो गया है। उनके प्राण उनकी बुद्धियों को बढ़ाने वाले होते हैं। उस मोक्ष को प्राप्त मनुष्य को पूर्वमुक्त जीव अपने पास रख लेते हैं।

वेदकालीन समाज

ऋग्वेद के अध्ययन से उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत परिचय मिलता है। ऋग्वेद के काल में आर्यों का समाज चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया था। ये आर्यों के चार वर्ण थे। यह वर्ण-व्यवस्था व्यक्तियों के अपने गुणों और कर्मों के अनुसार विकसित हुई थी। चारों वर्ण परस्पर प्रीतिभाव से रहते थे। ऋग्वेद के मन्त्रों में चारों वर्णों के कर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है। ये वर्ण स्वयं पुरुष परमेश्वर के अंगों से उत्पन्न हुए थे–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

इस पुरुष का मुख ब्राह्मण था, क्षत्रिय भुजाओं से उत्पन्न हुए थे। वैश्य इसका ऊरू था। पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई थी। ऋग्वेद में आश्रम व्यवस्था का उतना विकास दृष्टिगोचर नहीं होता, जितना अन्य वेदों में तथा वेदोत्तरकालीन साहित्य में है। ऋषियों ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था की थी। ऋग्वेद में मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य का और थोड़ा सा गृहस्थ जीवन का आभास दिया गया है। गुरु के पास विद्याध्ययन के लिए आने वाला विद्यार्थी ब्रह्मचारी कहलाता था और आचार्य उसे अपने पास

रखकर शिक्षा देता था। ब्रह्मचर्य का पालन करना बालकों और बालिकाओं दोनों के लिए अनिवार्य था। निम्न मन्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा गाई गई है–

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः। प्रजापतिर्विराजति विराडिन्दो भवद्वशी।
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं नियच्छति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति।।
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत।।[14]

वेदों में गृहस्थ आश्रम को सब प्रकार की शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति का साधक बताया गया है। यह आश्रम ब्रह्मचर्य के बाद विवाह के अनन्तर प्राप्त होता है। ऋग्वेद में विवाह के आदर्शों और विधि का रोचक वर्णन किया गया है। वर और कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए यौवन प्राप्त करने पर विवाह के अधिकारी होते थे। विवाह के समय वर कन्या का हाथ ग्रहण करके कहता था। यथा–

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।।

सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए मैं तुम्हारा हाथ ग्रहण करता हूँ। मुझ पति को पाकर तुम वृद्धावस्था तक पहुँचना। विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र को प्राप्त करना था। विवाह के अनन्तर इन्द्र से प्रार्थना की जाती है–हे इन्द्र! इस नारी को तुम उत्तम पुत्रों वाली और सौभाग्यवती बनाओ। विवाह होने के बाद पतिगृह में पत्नी का बहुत अधिक सम्मान और अधिकार होता था। वह सास, ससुर, ननद और देवरों के घर में सम्राज्ञी होती थी और सब पर शासन करती थी।

ऋग्वेद के युग में नारी जाति ने समाज में उचित सम्मान और अधिकार प्राप्त किया था। ऋग्वेद के अनेक देवता–पृथिवी, उषा, सूर्य, वाक् आदि नारियाँ हैं तथा अनेक ऋषिकाएँ भी हैं जो ऋषियों के साथ शास्त्रार्थ करती थीं। वैदिक युग में नारियों का देवियों के समान आदर किया जाता था। पिता के घर में कन्याएँ बहुत अधिक स्नेह और सम्मान पाती थीं। ब्रह्मचर्य का पालन करना उनके लिए अनिवार्य था और वे उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। अपने लिए योग्य पति का वरण करने के लिए वे स्वतन्त्र होती थीं।

विवाह होने के बाद नारियों का पति के घर पर पूरा अधिकार होता था। वे पति के लिए सन्तान उत्पन्न करती थीं और उसके प्रत्येक कार्य में सहायक होती थीं। पति के यज्ञ के कार्यों में तो वे सहायक होती ही थीं, आवश्यकता होने पर युद्धों में भी जाती थीं। ऋग्वेद के वचनों के अनुसार पत्नी को पति के प्रति प्रेम करने वाली एकनिष्ठ और प्रत्येक कार्य में सहभागिनी होना चाहिए। असती, विपथगामिनी और पति से द्वेष करने वाली नारी की सर्वत्र निंदा की गई है।

वैदिक संस्कृति प्रायः ग्रामीण संस्कृति थी। उस समय बड़े नगरों का निर्माण नहीं हुआ था। ऋग्वेद में आर्येतरों के ही बड़े नगरों का उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने उनके 100 नगरों को नष्ट किया। घर के लिए यज्ञशाला, वास्तु, पस्त्या, आयतन आदि शब्द ऋग्वेद में आए हैं। घरों के निर्माण में यज्ञशाला का विशेष महत्त्व होता था। घर के चार भाग होते थे–अग्निशाला, हविर्धान, पत्नीनां सदन और सदस्।

ऋग्वैदीय काल का भोजन सादा और पौष्टिक होता था। घी, दूध, दही आदि का वे प्रचुर प्रयोग करते थे। अनाजों में यव और चावल अधिक प्रयोग में आते थे। उस समय के पेय पदार्थों में जल और दूध के अतिरिक्त सोम और सुरा का भी स्थान था। मधु का उल्लेख आता है। सम्भवतः यह शब्द शहद और सुरा दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में सोम रस को बहुत महत्त्व दिया गया है। यह मुंजवान् पर्वत पर उत्पन्न होने वाली सोम लता का रस था। इसको विशिष्ट विधियों से निकाला जाता था और तैयार किया जाता था। यज्ञों के अवसरों पर सोम पान करने के लिए देवताओं का आवाहन होता था। ऋग्वेद के युग में अधिकतर ऊन के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। कपास के वस्त्रों का प्रचलन कम था। ऋग्वेद में वर्णित वस्त्रों में वासस्, वस्त्र, अधोवस्त्र और उत्तरीय उल्लेखनीय हैं। मृगचर्म और वल्कल वस्त्र भी पहने जाते थे। इन वस्त्रों को तपस्वी धारण करते थे।

वैदिक काल के मानव आभूषणों के भी शौकीन थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। ऋग्वेद में प्रायः सोने के ही आभूषणों का उल्लेख मिलता है। रुक्म, निष्क आदि आभूषणों का उल्लेख मिलता है। ये आभूषण गले में, वक्षःस्थल पर, कानों में, हाथों में और पैरों में पहने जाते थे। स्त्रियाँ विविध प्रकार से अपने को सजाती थीं और अनेक प्रकार की वेणियाँ बनाती थीं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेदकालीन धर्म एवं समाज की स्थिति समुन्नत एवं सुदृढ़ थी। वर्तमान काल में भी वैदिक रीतियों के अनुसार जीवन-यापन करने से ऐहिक सुख सहित पारलौकिक सुख की कामना की जा सकती है। वेदकालीन सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों को वर्तमान समाज व्यवस्था पर लागू किया जाए तो समाज का स्वरूप समरसता पूर्ण, सामंजस्य पूर्ण एवं सहिष्णुता पर आधारित होगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यताओं का पूर्ण उपयोग कर राष्ट्र एवं समाज के समुन्नत विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

सन्दर्भ :

1. ऋक् सूक्त संग्रह, भूमिका भाग, पृष्ठ 38
2. ऋग्वेद, 1.164.46
3. वही, 6.45.6
4. निरुक्त
5. ऋक् सूक्त संग्रह, भूमिका भाग, पृष्ठ 39-40
6. ऋग्वेद, 1.164.20
7. वही, 1.22.10
8. वही, 10.129.1-7
9. वही, 10.121.1-10
10. वही, 10.14.7
11. वही, 10.59.6
12. वही, 10.62.1
13. वही, 10.90.12
14. अथर्ववेद, 11.5.16-19, यजुर्वेद, 38.17, 26.2, ऋग्वेद, 1.96.1
15. ऋग्वेद, 10.85.36
16. कौशिकगृह्यसूत्र, 78.79 कण्डिका, अथर्ववेद 14.1.61, 14.2.30, 14.1.47
17. ऋग्वेद, 1.85.25, 1.49.2, यजुर्वेद, 13.26
18. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 431

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय समरहिल,
शिमला- 171005 मो. : 9418579522
ईमेल: dr.dthakur78@gmail.com

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में `संजीव' का उपन्यास `मुझे पहचानो `

-शशि कुमारी (शोधार्थी)

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग विशेष का प्रतिनिधि होता है। उसका साहित्य उसके जीवन अनुभवों का परिणाम होता है। समकालीन हिन्दी साहित्यकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले लेखक 'संजीव' भी अपने युग के प्रतिनिधि लेखक हैं। अभावों से जूझता हुआ उनका जीवन, उनके लेखन कार्य को रोक नहीं पाया अपितु उस जीवन ने उनके लिए प्रेरणा का काम किया। स्त्री के प्रति सहानुभूति, शोषित वर्ग के प्रति संवेदना तथा पीड़ित वर्ग के प्रति करुणा को अपने साहित्य का केन्द्र बनाकर, उन्होंने समय पर समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति पाठक को रूबरू करवाया है। उनके उपन्यासों में किसनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान-नीचे आग है, धार, पाँव तले की दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, आकाश चंपा, रह गई दिशाएँ इसी पार, फाँस, प्रत्यंचा आदि उल्लेखनीय हैं। इसी श्रृंखला में उनका उपन्यास 'मुझे पहचानो' आता है जो सन् 2020 में सेतु प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। सन् 2023 में इस उपन्यास के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

साहित्य का मूल केन्द्र समाज होता है और समाज, सामाजिक प्राणियों का समूह है। अपने रंग, रूप, संस्कृति, वेश-भूषा एवं विशेषताओं के आधार पर प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी से भिन्न एवं अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला होता है। विभिन्न वर्गों में विभाजित वर्गों के भीतर कुछ समस्याएँ भी होती हैं जो उस समाज विशेष को कमज़ोर बनाती हैं। समस्या अपने भीतर कई कठिन विषयों एवं प्रसंगों को संजोए हुए होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस उपन्यास में व्यक्त समस्याओं का चित्रांकन किया गया है।

शिक्षार्थी हिन्दी शब्दकोश में समस्या का अर्थ है- 'सं. (स्त्री) 1) कठिन या विकट प्रसंग 2) कठिन विषय।'

सामाजिक समस्या को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. अजमेर सिंह लिखते हैं-

'सामाजिक समस्या का साधारण शब्दों में अर्थ है - समाज का विकास अवरुद्ध करने वाले कारण या उनसे उत्पन्न तनाव। यह व्यक्ति और समाज के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करके इनके विकास में निरन्तर अग्रसर रहता है। जिस समय किन्हीं कारणों से यह संतुलन भंग होता है और सामाजिक मान्यताओं के सहज पालन में बाधा उत्पन्न होती है, उस समय सामाजिक समस्याएँ देखने में आती हैं।'

सुप्रसिद्ध साहित्यकार संजीव का उपन्यास 'मुझे पहचानो' भी इसी सामाजिक असंतुलन की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास की मूल समस्या सती प्रथा पर केन्द्रित है परन्तु सती प्रथा के अतिरिक्त ऐसी अनेक समस्याएँ भी उपन्यास में चित्रित की गई हैं जो एक स्वस्थ समाज के लिए हानिकारक हैं।

सती प्रथा-

संसार रूपी गाड़ी को चलाने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का होना अनिवार्य है परन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि शारीरिक रूप से अधिक शक्तिशाली होने के कारण पुरुष का वर्चस्व स्त्री की तुलना में अधिक रहा। इतिहास की ओर यदि हम अपनी दृष्टि डालें तो वैदिक काल के अतिरिक्त अन्य कालों के भीतर स्त्री की अच्छी स्थिति के दर्शन बहुत कम मिलते हैं। स्त्रियों पर लागू की गई सती प्रथा एक ऐसी प्रथा थी जो स्त्रियों से उनके जीवन जीने के अधिकार को छीन रही थी। मनुष्य के जीवन और मरण का निर्णय केवल उस परम सत्ता परमात्मा के पास है। धर्म के ठेकेदार स्वयं को ही ईश्वर के समान समझ कर यह नियम निर्धारण करने में जुट जाते हैं कि स्त्री को जीने का अधिकार कब तक है।

उपन्यास में सावित्री कुंवर को छोटे कुंवर की मृत्यु पर सती कर दिया जाता है। सौभाग्यवश वह बच जाती हैं। इस बात का किसी को पता नहीं कि वह जीवित है। उसे मरा हुआ समझ कर उसके नाम का कुलदेवी मंदिर बनाया जाता है। आडंबरों और अंधविश्वासों से भरे हुए लोग उस स्त्री की पूजा करते हैं जो अपनी आत्मरक्षा भी नहीं कर पाई। मनोज नामक युवक जब अनमोल की पत्नी (सावित्री कुँवर) से पूछता है कि आप नहीं जातीं पूजा करने तो प्रति उत्तर में वह कहती है :

'जो औरत खुद अपनी रक्षा न कर सकी, वह दूसरों की रक्षा कर सकती है क्या? '

राजा राममोहन राय एवं अंग्रेजों के प्रयासों से यह प्रथा समाप्त तो हो गई परन्तु धर्म के ठेकेदार आज भी इसे एक पवित्र प्रथा मानते हैं। अउधू जैसे ढोंगी पंडित का कहना था कि सती से बढ़कर गौरवमयी प्रथा इस संसार में कोई नहीं है। अपने क्रोध को स्पष्ट करते हुए वह कहता है–

'ऐसी गौरवमयी परंपरा को अंग्रेजों ने बंद कर दिया। मैं न हुआ, लॉर्ड विलियम बेंटिक और राममोहन को गोली से उड़ा देता।'

कहने का अभिप्राय यह है कि अउधू जैसे अज्ञानी एवं धर्म के ठेकेदार आज भी इस प्रथा को पवित्र ही मानते हैं जिसने न जाने कितनी बेकसूर जानों को आग की लपटों में लिया। यह हमारे समाज की विडम्बना है कि स्वयं स्त्रियाँ भी सती हुई स्त्री को बड़े आदर और पूज्य भाव से देखती थीं। जो स्त्री सती होने से डरती थी उसके चरित्र को अच्छा नहीं समझा जाता था। इसी स्थिति का चित्रण भी उपन्यास में देखने को मिलता है। जब औरतें सती के दर्शन के लिए जाती हैं और उन्हें पता चलता है कि स्त्री तो भाग गई, वह निराश हो जाती हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु है। एक औरत कहती है :

'हम तो कहते हैं, सत ही नहीं था उसमें नहीं तो एक क्या सात फाटक के अन्दर होती तो भी फाटक तोड़कर आग में कूद कर अपने पति के साथ हो लेती। '

भले ही यह प्रथा वर्तमान समय में विद्यमान नहीं है परन्तु अनेक कारणों से स्त्री आज भी भीतर से सती होती जा रही है।

धार्मिक आडंबर एवं अंधविश्वास :

आरम्भ से ही समाज को परिचालित करने में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका रही है। धर्म और आस्था का अनावश्यक प्रयोग किसी भी जाति एवं समाज को नाश की ओर धकेल देता है। नकारात्मक रूप से किया गया धर्म का प्रयोग सामाजिक व्यवस्था को कूड़े के ढेर में धकेल देता है। वह स्त्री जिसकी अभी तक मृत्यु भी नहीं हुई उसे एक कुलदेवी के रूप में पूजा जाता है। यह कुछ नहीं लोगों का अंधविश्वास और राय साहब जैसे लोगों की कूटनीतियाँ हैं जो भोले-भाले लोगों को धर्म के जाल में फंसाकर उनकी आस्थाओं से खेलते हैं। कुलदेवी की पूजा के लिए जाते हुए जत्थे पर व्यंग्य करता हुआ एक युवक कहता है :

'अरे धंधा है धंधा। कुलदेवी या सती माई के पूजन को जाय रही होंगी राय साहब के घर की महारानियाँ। '

कुलदेवी के मंदिर के लिए जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति आस्था और विश्वास से भरा हुआ है। लोगों की यह मान्यताएँ भी बन गई हैं कि कुलदेवी के मंदिर में मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं:

'फलाँ औरत बाँझ थी, लड़का हुआ। '

'फलाँ की लॉटरी लग गई। '

'फलाँ को डॉक्टर ने जवाब दे ही दिया था, सती माता का भभूत लगाया, आज तक जी रहा है।'

इस तरह की झूठी धार्मिक मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयास इस उपन्यास के माध्यम से हुआ है।

भ्रष्ट राजनीति :

उपन्यास में चित्रित रायसाहब एवं लालसाहब दोनों ही अपने आपसी मतभेद के कारण एक दूसरे के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं रखते। दोनों रत्नापट्टी (रत्नों की खान) नामक रियासत के राजा हैं। अन्तर बस इतना है कि रायसाहब राजा उदयभानु सिंह की रानी की सन्तान हैं और लालसाहब एक वेश्या से उत्पन्न। दोनों राजा एक दूसरे के शत्रु हैं। जब राजाओं को अपनी आपसी लड़ाई-झगड़ों से फुर्सत नहीं तो वे प्रजा की क्या सहायता कर सकते हैं। रियासत में पानी की कोई व्यवस्था नहीं, साधारण जनता गरीबी से जूझ रही है उस पर राजाओं के अत्याचारों से जनता भयभीत है। रायसाहब एक हीरे को पाने के लिए जगत प्रजापति का पूरा घर मिट्टी में मिला देते हैं। परन्तु फिर भी उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता। बड़े लोगों के भीतर इस प्रकार का अमानवीय व्यवहार एक सफल समाज के मुँह पर तमाचे सा प्रतीत होता है। कोई भी पार्टी साधारण जनता के लिए कुछ भी नहीं करना चाहती। अर्थ के आधार पर राजनीतिक पार्टियों का निर्माण होता है, जिनके सारे सिद्धांत पैसों में बिके होते हैं। नेता वही बनता है जिसके पास पैसे की अधिक ताकत हो। इस दोगली राजनीति का पर्दाफाश उपन्यास की इन पंक्तियों के माध्यम से हुआ है :

'सुनोगे पहले, तिरंगे में गए नहीं मिला, फिर भगवा में गए नहीं मिला, फिर साइकिल में गए नहीं मिला, आखिर में हमसे कहा कि नक्सलियों की कोई पार्टी है उसी में चले जाते हैं। आश्चर्य उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई और पार्टियों को भी उनसे कोई दिक्कत नहीं

हुई.... टिकट के हिसाब से सिद्धांत बनते हैं।'

राजाओं अथवा नेताओं को जहाँ प्रजा के हित के लिए सोचना चाहिए वहीं वे अपना स्वार्थ सिद्धि का कोई भी अवसर शेष नहीं छोड़ते। मनुष्य के भीतर पनप रही यह प्रवृत्ति आधुनिकता का प्रभाव है। डॉ. कीर्ति केसर इस विषय में लिखती हैं:

'स्वातंत्र्योत्तर समाज पर अर्थ के पश्चात् बहुत व्यापक गहरा दबाव राजनीति का पड़ा है। स्वाधीनता संघर्ष के आदर्श मूल्यों का अध्याय समाप्त हो गया और राजनीति तथा अर्थ समाज के जीवन के अन्योन्याश्रित हो गये। अत: आपाधापी का दौर शुरू हुआ और नौकरशाही, अफसरशाही बन गई जिसने भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिकता की नयी रूढ़ियों को जन्म दिया जो सामाजिक जीवन को ग्रसने लगी। चुनाव, सामुदायिक विकास योजनाओं, सहकारिकता, भूमि सुधार और पंचायत के राजमार्ग से भ्रष्ट राजनीति का प्रभाव अपरिहार्य रूप से ग्रामीण जीवन पर भी पड़ा है।'

निष्कर्ष :

'संजीव' द्वारा लिखित इस उपन्यास की मूल समस्या के केन्द्र में सती प्रथा है। परन्तु सती प्रथा के अतिरिक्त स्त्रियों पर अत्याचार, राजनीतिक भ्रष्टाचार, शोषित वर्ग की दयनीय दशा, धर्म के नाम पर ढोंग तथा पाखंड अन्य समस्याएँ हैं। इस उपन्यास में समाज को खोखला करने वाली इन सारी परतों को उधेड़ा गया है। अत: यह उपन्यास झूठे गौरव, धार्मिक मान्यताओं एवं पाखंड से पर्दा हटाने का प्रयास कर समाज को एक अच्छी राह पर चलने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ :

1. शिक्षार्थी हिन्दी शब्दकोश, हरदेव बाहरी (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1990) पृ. 805
2. अजमेर सिंह काजल, उपन्यासकार राजेन्द्र यादव (समाजशास्त्रीय अध्ययन) (दिल्ली : संजय प्रकाशन, 2002) पृ. 13
3. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश : सेतु प्रकाशन, 2020) पृ. 55
4. वही, पृ. 126
5. वही, पृ. 163
6. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश : सेतु प्रकाशन, 2020) पृ. 14
7. वही, पृ. 114
8. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश : सेतु प्रकाशन, 2020) पृ. 68
9. कीर्ति केसर, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन (दिल्ली : नचिकेता प्रकाशन, 1982), पृ. 17

- शशि कुमारी (शोधार्थी) हिन्दी - विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर। (पंजाब)
मोबाइल : 9797634518
ई-मेल - shashikumariv1051997@gmail.com

आलेख

तुलसीदासकृत रामचरितमानस में काव्य एवं नाटककला का समन्वय

-डॉ. धर्मपाल साहिल

भारतीय विद्वानों, चिन्तकों, दार्शनिकों के अतिरिक्त इंग्लैंड के एक विश्वविद्यालय के एक अंग्रेज प्रोफेसर ने बड़े ही जोरदार ढंग से लिखा था कि तुलसी कृत रामचरितमानस एक विचित्र नैतिक पुस्तक है। जिस के नाटकीय दृश्य विशेषकर उत्तर भारत के गांव-गांव, शहर-शहर में बड़े उत्साह से खेले जाते हैं। इसी प्रकार अर्नेस्ट उड ने भी अपनी पुस्तक 'इंगलिश मैन डिफेंडरा मदर इंडिया' में रामचरितमानस की प्रशंसा करते हुए इस ग्रन्थ को काव्य एवं नाटक की दृष्टि से किसी भी लातीनी एवं यूनानी भाषा के सर्वमान्य ग्रंथों बढ़कर बताया है। इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ हों, महात्मा गांधी हों, लाला हरदयाल हों, ठाकुर रविन्द्रनाथ टैगोर हों यहां तक कि इस्लामिक लेखक खानखाना हों, फारसी कवि 'विलासी' हों सभी ने एक स्वर में रामचरितमानस को श्रेष्ठ साहित्यिक कृति मानते हुए इससे नैतिक प्रेरणा लेने की बात कही है तथा इस महान ग्रंथ को विश्वस्तरीय काव्य एवं नाट्य कला का अनूठा समन्वय माना है।

फारसी साहित्य में कथन है कि 'रज्म' (वीर रस महाकाव्य) एवं 'बज़्म' (शृंगार रस महाकाव्य) एक ही कवि द्वारा लिखना संभव नहीं है। इस दृष्टि से वहां के आलोचक मिल्टन तथा शेक्सपीयर सरीखे कवियों को भी कमतर मानते हैं लेकिन तुलसी जी का कमाल यह है कि उन्होंने 'रामचरितमानस' में न केवल काव्य एवं नाटक कलाओं का एकीकरण किया बल्कि काव्य एवं नाटक के सभी गुणों को सफलतापूर्वक निभाया भी है। आध्यात्मिक भावों, चारित्रिक संकल्पों, मर्मस्पर्शी घटनाओं का दृश्यात्मक प्रस्तुतिकरण, लयात्मक स्तर पर विश्व साहित्य में मिलना कठिन है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में अपनी काव्य एवं नाटकीय कला को इस शिखर पर पहुंचा दिया के साहित्य-सुधियों द्वारा यह निर्णय कर पाना कठिन है कि तुलसी जी का स्थान महाकवि की श्रेणी में नियत किया जाए अथवा एक महानाटककार के रूप में। यह तो सर्वविदित सत्य है कि महाकाव्य में जो सफलता तुलसी जी ने अर्जित की है, वह विश्वभर में अन्यत्र किसी साहित्यकार को प्राप्त नहीं हुई।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में दोहों, चौपाइयों, सोरठों व छंदों के अनुपम उपयोग से जहाँ स्वयं को एक उत्कृष्ट रामभक्त कवि स्थापित किया है, वहीं इस महाकाव्य के कथानक में एक महानाटक के सभी गुणों को भी निभाने में सफलता प्राप्त की है जो पूर्व से वर्तमान तक किसी भी साहित्यिक कृति में दिखाई नहीं देते। रामचरितमानस में अनेकों ऐसे दृश्य उपस्थित हैं जो घटना के प्रस्तुतिकरण, संवादों भावनाओं एवं चरित्रों की कसौटी पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। विद्वानों एवं आलोचकों ने इनकी तुलना शेक्सपीयर एवं बर्नाडशा के नाटकों से करने का प्रयास किया है, अन्ततः रामचरितमानस को ही श्रेष्ठ पाया है। उनके अनुसार तुलसी जी एक नाटककार के रूप में नाटककला के सभी आदर्शों की पालना करते हैं वहीं एक उत्कृष्ट कवि के तौर पर सभी नौ रसों के प्रवाह को शिखर पर पहुँचा देते हैं। शृंगाररस हो या बीररस, हास्यरस हो या रौद्ररस सभी को पूरी शालीनता एवं प्रवीणता से प्रस्तुत करते जाते हैं। बानगी देखें- धनुष यज्ञ के दौरान-

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कुछ सन्देहू॥

इसी प्रकार परशुराम के चरित्र को यूँ चित्रित करते हैं, जिस में उनका रौद्ररस, शान्तरस में परिवर्तित होता जाता है-

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वज पताका॥

इस प्रकार यदि ट्रेजेडी नाटकों के रचयिता शेक्सपीयर एवं तुलसीदास के दुखांत नाटक- दृश्यों की तुलना करें तो तुलसीकृत अयोध्याकांड के समक्ष शेक्सपीयर के चारों नाटक क्षीण से महसूस होने लगते हैं। तुलसीकृत अकेले अयोध्याकांड में ही शेक्सपीयर के चार नाटकों जितनी सामग्री एवं नाटकीय तत्व उपस्थित हैं। यहां एक विलक्षणता और भी है। शेक्सपीयर जहाँ 'ट्रेजेडी' की केवल

विवेचना करते हैं नहीं तुलसी जी उम्र विवेचना के साथ साथ उसका समाधान भी प्रस्तुत करते जाते हैं। अयोध्याकांड में दशरथ कैकेई धन्यरा, कौशल्या राम, भरत, लक्ष्मण आदि के चरित्र चित्रण में वात्सल्य, करुणा, त्याग, श्रृंगार आदि रस प्रधान हैं तो लंकाकांड तक जाते जाते और बीभत्स जैसे प्रधान होते जाते हैं। इस प्रकार तुलगी जी सभी नौ रसों का निर्वाह बहुत ही कलात्मक सुन्दरता के साथ करते जाते हैं।

तुलसी जी ने रामचरितमानस में स्थान स्थान पर छोटे छोटे लेकिन आत्म स्पर्शीय दृश्यों को जोड़कर नाटकीय अंशों को प्रस्तुत करके नाटकीयता एवं काव्यात्मकता के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं कि रामचरित मानस का पाठ करते व्यक्ति की आँखों के समक्ष वह अनुपम दृश्य किसी चलचित्र की भाँति उपस्थित होते जाते हैं। पालक उनमें टूबकर अभिभूत होता जाता है। काव्यरूप में वार्तालाप की कथोपकथन प्रश्नोत्तर शैली में समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता जाता है। ऐसे रसप्रधान दृश्य व्यक्तिगत से सर्वजन को समाहित करने में समक्ष होते हैं। अयोध्या का राजमहल हो या चित्रकूट आश्रम व अन्य कोई अरण्यस्थल वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं रहस्यों का प्रकटीकरण भी आत्मा होता है।

रामचरितमानस की काव्य एवं नाटककला की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इनका पाठ अथवा श्रवण करते समय व्यक्ति एक ही समय, समूह पात्रों के संसार में साधारण जीवों की भाँति विचरण करते हुए महसूस करता है तथा साथ ही साथ परलोक से ब्रह्मा जी सहित अन्य दैवीय शक्तियों की उपस्थिति लीला का साक्षात् अनुभव भी करने लगता है। तुलसी जी धरती के रंगमंच पर अभिनय करते पात्रों के साथ-साथ उनका निर्देशन करने वालों से भी साक्षात्कार कराते जाते हैं। यह कलात्मक उत्कृष्टता विश्व के किसी अन्य महाकाव्य नाटक रचना में दिखाई नहीं देती। दशरथ विलाप, राम विलाप, सीता विलाप आदि हमें स्मरण दिलाते रहते हैं कि रामचरितमानस के वन्दनीय पात्रों में साधारण व्यक्तियों की साधारणता विद्यमान है। वे देवत्वयुक्त होते हुए भी साधारण मानव-तुल्य विचरण करते हैं।

रामचरितमानस में अयोध्याकांड के बाद लंकाकांड में राम रावण युद्ध, मिल्टन द्वारा वर्णित शैतान एवं ईश्वर पुत्रों के संग्राम से कहीं अधिक भयानक, प्रचंड एवं दिल दहला देने वाला है। इन दृश्यों में मानव अंगों का कटना, उड़ना, पुनः जुड़ना, लघु से विराट होना, विराट से सूक्ष्म हो जाना जैसे डरावने दृश्य विश्व के किसी भी महाकाव्य या महानाटक में नहीं मिलते। तभी तो मिल्टन सरीखे विद्वान् भी यह कहने को विवश हुए होंगे कि यवन और लातीनी भाषाओं के सर्वमान्य ग्रन्थ रामचरितमानस के समक्ष नहीं टिकते।

इनमें कोई सन्देह नहीं है कि चाहे तुलसीदास जी हों या मिल्टन, महाकाव्य के माध्यम से सार्वभौमिक सत्य की पहचान तथा उसकी स्थापना हेतु कवि-कल्पनाओं का उपयोग कर लेते हैं। वह ऐसे पात्रों को कल्पना से गढ़ लेते हैं जो शायद परोक्ष रूप में जन साधारण को धरती पर दृश्यमान नहीं होते, लेकिन वह पात्र बिम्ब बनकर सदियों सदियों विश्व के प्रत्येक कोने में प्रतिबिम्बित होते दिखाई भी देते हैं और अनुभव भी होते हैं यहां तक कि आम आदमी इन पात्रों के बिम्ब अपने भीतर भी अनुभव करने लगता है। यह बात मिल्टन के 'पैराडाइस लास्ट' तथा तुलसीदास कृत रामचरितमानस के विषय में आसानी से समझी जा सकती है। लेकिन भारत के पाश्चात्य प्रभाव तथा मार्कसी सिद्धान्तों के अंधउपासक, केवल भारत के महाकाव्यों के ऐसे पात्रों को हास्य मजाक का विषय बनाते हैं, उनकी आलोचनाएं करते हैं। महाकवि नाटककार क्या कहना, दिखाना व बताना चाहता है कि अपेक्षा, क्या कहा, दिखाया व बोला है, उसे टॉरगेट करने लगते हैं। निशाना साधने लगते हैं।

महाकाव्य रामचरितमानस की एक अन्य विशेषता है कि तुलसी जी ने रामकथा के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व का चित्र खींचा है। देव-राक्षस, साधू शैतान, इन्सान हैवान, अच्छी-बुरी शक्तियाँ विश्व के हरेक कोने में विद्यमान हैं। एक महान कवि-कलाकार बुराई पर पर्दा नहीं डालता, बुराई को संकेतों व बुझारत के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। वह जहाँ अच्छाई का महिमामंडन करता है, वहीं बुराई का वीभत्स रूप दिखाने में भी संकोच नहीं करता तथा अच्छाई के लाभ तथा बुराई की हानियों से अवगत कराते हुए, आम साधारण को अनुशासित, मर्यादित तथा सात्विक जीवन जीने का सन्देश भी देता जाता है। रामचरितमानस में नैतिक सीमाओं का उल्लंघन नहीं होने दिया है। यही कारण है कि सीता, लंका में भी रावण के महल में न होकर अशोकवाटिका में राक्षसनियों के पट्टे में सुरक्षित है। यह अपने समय ' त्रेतायुग' का सत्य है जबकि कलियुग में यह सब संभव न हो तुलसीकृत रामचरितमानस युगों-युगों तक मानव मूल्यों, मर्यादाओं तथा आदर्शों का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी। यही किसी भी कालजयी कृति की विशेषता होती है। यही बात राम भक्त तुलसीदास जी को कालजयी कवि नाटककार के रूप में अमर करती है।

विश्वभर में मिल्टन को 'कर्तव्य' शेक्सपीयर को 'आनन्द' लेकिन तुलसीकृत रामचरितमानस को कर्त्तव्य, आनंद, मर्यादा तथा मुक्ति हेतु पढ़ा- पढ़ाया जाता है। टैगोर कहते हैं कवि मन एक बंसी है, जिससे भाँति-भाँति के सुर निकलते हैं, लेकिन बांसुरी के रूप-गुण-

निर्माण का प्रभाव भी शब्दसुर पर पड़ता है। फटे हुए बाँस से न बाँसुरी बनती है, न बजती है। वहीं मिल्टन कहते हैं कि कवि का अपना जीवन ही कवितामय होना चाहिए, तभी वह ऐसी कविता लिख सकेगा जो विश्व-कल्याणकारी हो। यही विचार तुलसीदास जी कुछ यूँ प्रकट करते हैं :

श्री गुर चरण सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि,
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो
दायकु फल चारि।

यानि यदि मन रूपी मुकुर के मल, विक्षेप तथा आवरण को पहले दूर न किया जाए तो चित्र भी टेढ़ा होगा। यदि कवि हृदय में चित्र ही टेढ़ा होगा तो उसकी कविता सीधी कैसे हो सकती है।

रामचरितमानस में पिंगल शास्त्र की सभी सूक्ष्मताएँ, अलंकार, उपमाएं, प्रतीक, बिम्ब, भाव आदि पूर्ण प्रवीणता एवं भव्यता के साथ उपस्थित हैं। इसमें काव्य प्रवाह स्वाभाविक है। इस महाकाव्य की उड़ान, आदर्शों की ऊँचाई इतनी ऊँची है कि इसमें समस्त विश्व ही समाहित हो जाता है, ऊपर से काव्य कलाकारी तथा नाटककारी उस पर जड़े रत्नों जैसी है। इसी सन्दर्भ में एक अन्य बात, आमतौर पर मुगल शिल्पकारों की वास्तुकला में ढाँचा बहुत ऊँचा होता है पर उसमें सजावट रत्नकारों की भाँति की जाती है। शायद मुगल शिल्पकारों ने तुलसीकृत रामचरित मानस में वर्णित महलों, मंडपों, गुम्बदों, उद्यानों आदि वास्तुकला के वर्णन से यह सब सीखा हो।

रामचरितमानस में एक महान कथा को महाकाव्य तथा उत्कृष्ट नाटक शैली में जिस भाव प्रवणता एवं भाव व्यंजना से भरकर लिखा गया है। अन्यत्र दुर्लभ है। भारत में हिन्दी ही नहीं विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में रामचरितमानस के अनेक संस्करण हैं। ऐसा नि:संकोच कहा जा सकता है कि जब तक हिन्दी भाषा ही नहीं हमारी प्रांतीय भाषाएं जीवित रहेंगी 'रामचरितमानस' अपनी श्रेष्ठ काव्य-नाट्य कला के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के साथ जन-जन के मन में रचा बसा रहेगा। भारत के प्राण बन कर विश्व साहित्य में धड़कता रहेगा।

अन्त में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि रामचरित मानस में जिस महाकाव्यकला, नाटककला तथा गायनकला का उत्कृष्ट उपयोग हुआ है वह संसार भर में बेजोड़ है।

पंचवटी, एकता एनक्लेव, लेन-2,
बुलांबाड़ी, होशियारपुर 146021
सम्पर्क : 98761-56964

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कल्याण मानस, अंक 2 सितम्बर 1938, गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. कल्याण मानस, अंक 3 अक्तूबर 1938, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. भारतीय भाषाओं में राम कथा, पंजाबी, डॉ. हरमेन्द्र सिंह बेदी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 2017

आस्था का संगम स्थल

-प्रो० शेर सिंह

देवदार और चीड़ के छितरे जंगल के मध्य से मोड़ के बाद मोड़ वाली संकरी सड़क से अपने दिल को थामे जब श्री त्रिलोकनाथ मंदिर के पास पहुंचते हैं, तो अपने तन- मन में एक अलौकिक अनुभूति भीतर-बाहर से अभिभूत करती हुई प्रतीत होता है। ऐसा आभास होता है, मानो आप एक ऐसे लोक में पहुंच गए हैं जो कल्पना और सपनों वाला स्वर्ग हो। मन और मस्तिष्क दोनों अभिभूत होकर कुछ सोचने की बजाए केवल वाह कर उठता है! और, भगवान त्रिलोकनाथ के प्रति मन में श्रद्धा और समर्पण की ऐसी उत्कट भावना जाग उठती कि व्यक्ति अपना सुध-बुध खोकर किसी दूसरी ही दुनिया में पहुंचा हुआ अनुभव करता है। ऊपर आसमान की ओर देखे, तो लगता है आकाश पृथ्वी से मिलने को आतुर है, क्योंकि आकाश बहुत पास में दिखता है। ऐसा लगता है, मानो पर्वत के शिखर अपने शीश को झुकाकर लोगों के आगमन पर हर्षित होकर आकाश को अपने शीश में उठाए स्वागत कर रहे हैं। पर्वतमालाएं और उनके शिखर नैसर्गिक सौंदर्य और हरीतिमा से लहलहा रही होती हैं। जिस ओर भी दृष्टि उठाकर देखें, सब ओर जलधारा के साथ-साथ छोटी-छोटी घाटी सी दिखती है। बेशक वे नाले ही हैं। लेकिन स्वच्छ, शीतल जल की धाराएं वेग से बहती हुई सबको अचंभित करने के साथ ही मानसिक शांति और सुकून का अहसास कराती हैं। ऊंचे शिखरों पर जुलाई माह में भी मटमैली हो गई बर्फ की परतों के अवशेष पड़े दिख जाते हैं। यहां की प्राकृतिक रूप, छटा और अवर्णनीय सौंदर्य को देख हर कोई चमत्कृत- सा खड़ा रह जाता है।

संकरी, चमकीली चट्टानों से सटी सड़क और नीचे वेग से बहती चन्द्रभागा नदी है ! चन्द्र-भाग नदी आगे जाकर जम्मू-कश्मीर से होती हुई चिनाब नदी के नाम से पाकिस्तान पहुंचती है। चन्द्र - भाग नदी के किनारे-किनारे गाड़ी में दिल कड़ा करके बैठे रहने के पश्चात् जब तीनों लोकों के स्वामी भगवान शिव की भूमि त्रिलोकनाथ में प्रवेश करते हैं, तो रास्ते की सारी थकावट, धूल-मिट्टी से अटी सड़क के गड्ढों के धक्के भूल जाते हैं। यह पर्वतीय क्षेत्र लाहुल का ऐसा भाग है, जहां हिन्दू बहुसंख्या में हैं और पूरा क्षेत्र शिवमय है। लेकिन भगवान शिव के साथ भगवान बुद्ध का भी उतना ही प्रभाव है, और उतनी ही श्रद्धा तथा भक्ति भावना है। त्रिलोकनाथ गांव जिला मुख्यालय केलंग से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। त्रिलोकीनाथ का मंदिर शिखर शैली में निर्मित है। मंदिर की बनावट कला और वास्तु शिल्प का बेजोड़ नमूना है। इतिहासकारों का मानना है कि इस मंदिर को चंबा के राजा ललितादित्या ने नवीं- दसवीं शताब्दी के दौरान निर्माण कराया था। कुछ इतिहासकार यह भी मानते हैं कि इस प्राचीन हिन्दू मंदिर का निर्माण चंबा के राजा अलबर सेन की पत्नी रानी सुल्तामन देवी ने नवीं दसवीं शताब्दी के दौरान किया था। निर्माण संबंधी तथ्यों में मतभिन्नता हो सकती है। लेकिन यह निर्विवाद है कि इसे चंबा के राजवंशों द्वारा निर्मित किया गया था। श्री त्रिलोकनाथ जी का मंदिर प्राचीन हिन्दू मंदिरों में से एक है। ऐसा माना जाता है कि राजा का बोधिसत्वा आर्य अवलोकीतेश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति भावना थी। इसी के कारण उन्होंने तीनों लोकों के स्वामी भगवान शिव की मूर्ति के ललाटबिम्ब पर एक और प्रतिमा स्थापित की, जिसे बौद्ध लोग 'बुद्ध' और हिन्दू 'अन्न पुरूष' के रूप में मानते हैं।

त्रिलोकनाथ दो संस्कृतियों, संस्कारों, दो धर्मों, अनुयायियों, मान्यताओं और मर्यादाओं का संगम स्थल है। गर्मी के मौसम में हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्मों के लोग हजारों की संख्या में दर्शनार्थ, मन्नत मांगने अथवा मनोकामनाएं पूरी होने पर आभार व्यक्त करने, प्रियजनों के बिछुड़ जाने के उपरान्त तीर्थ स्थल का दर्शन करने के साथ-साथ अपने उद्गारों श्रद्धांजलि सुमन अर्पित, समर्पित करने आते हैं। मंदिर एक टीलेनुमा चट्टान पर बना हुआ है। चट्टान से नीचे हजारों फुट गहरी खाई है। दूर से ही मंदिर के शिखर से लहराता केसरिया

ध्वज और सामने डोरियों से बंधे, टंगे बौद्ध धर्म के पवित्र और आदर, मान का प्रतीक खत्तक, छपी हुई रंगीन पताकाएं, सफेद रेशमी दुपट्टे अथवा वस्त्र सभी दिशाओं में फैले हवा में झूलते, फरफराते नजर आते हैं।

किंवदंती है कि त्रिलोकनाथ गांव में एक पुहाल (चरवाहा / गड़रिया) रहता था। उसका नाम टिण्डणु था। वह गांव वालों की भेड़- बकरियों को चराता था। वह सुबह अपनी भेड़ों को चराने के लिए ऊंचे पर्वत शिखरों तक ले जाता था। भेड़ों के साथ-साथ पर्वत शिखरों पर चढ़ते, चलते थक जाता, तो कुछ समय के लिए विश्राम करने के उद्देश्य से सो जाता था। इस दौरान देवलोक की परियां आकर भेड़- बकरियों को छिपकर दुह लेती थीं। चरवाहे को कुछ पता नहीं चलता था। शाम को गांव के लोग जब पाते कि उनकी भेड़-बकरियों को किसी ने दुह लिया है, तो वे चरवाहे पर शक करते और उसे बुरा-भला कहते। चरवाहा बेकसूर होने के बावजूद मन मसोसकर रह जाता।

एक दिन उसने ठान लिया कि देखें, भेड़-बकरियों को कौन दुह लेता है ? इस रहस्य को जानने के लिए उसने सो जाने का नाटक किया। उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब उसने देखा कि अतीव सौंदर्य वाली सात परियां भेड़-बकरियों के बीच आकर उन्हें दुहने लगी हैं। एक किशोर सा बालक भी उनके साथ खड़ा है। चरवाहे ने आज अपनी आंखों से उन्हें भेड़-बकरियों को दुहते हुए देख लिया था। उसे आज अपने को निर्दोष साबित करने का अवसर मिल गया था। उसने प्रमाण के तौर पर उन परियों को पकड़ना चाहा। लेकिन परियां उसके हाथ नहीं आईं। परन्तु उसने बालक को पकड़ लिया और उसे कसकर अपनी पीठ पर उठा लिया। बालक को पीठ पर उठाए वह अपने गांव तुन्दा की ओर चल दिया। उसे आज गांव वालों को अपने निर्दोष होने का प्रमाण दिखाना था। पीठ पर कसे बालक ने उसके साथ इस शर्त पर चलने की सहमति दी कि वह गांव की ओर चलते हुए पीछे की ओर मुड़कर नहीं देखेगा और गांव में पहुंचने पर वह बालक को अपने घर में ही रखेगा। टिण्डणु चरवाहा बालक की शर्त को मान गया।

चलते-चलते चरवाहे को अपने पीछे विभिन्न देवरूप सायों का अपने साथ चलने का आभास हुआ। उसे मंत्रमुग्ध करने वाले विभिन्न वाद्ययंत्रों, गाजे-बाजे की मधुर गीत, संगीत बजने की ध्वानि सुनाई देने लगी। उसे ऐसा लगा कि कोई अभूतपूर्व बारात उसके साथ चल रही है। उसे शंका हुई कि बालक उसकी पीठ में है भी अथवा नहीं ? शर्त को भूल उसने पीछे मुड़कर जैसे ही बालक को देखना चाहा, वह शैल हो गया। उसकी पीठ का बालक भी छिटककर गिर गया और उससे थोड़ी दूरी पर वह भी शैल हो गया।

कहते हैं वह बालक और कोई नहीं बल्कि तीनों लोकों के स्वामी भगवान शिव शंकर स्वयं थे। तीनों लोकों के स्वामी भगवान त्रिलोकनाथ के कारण तुन्दा गांव का नाम त्रिलोकनाथ पड़ गया। जनश्रुति है कि शैल हुए भगवान शिव के इसी रूप को केन्द्र में रखकर मंदिर का निर्माण किया गया है। इस संबंध में अनेक जनश्रुत्रियां हैं, लेकिन सभी का एक ही निचोड़ है कि टिण्डणु पुहाल ने ही भगवान त्रिलोकनाथ को अपने कंधे अथवा पीठ पर उठाकर लाया था। मंदिर में शैल हुए पुहाल और शिव के बालक स्वरूप शिला आज भी विद्यमान हैं।

सात परियां सात धाराओं के रूप में आज भी त्रिलोकनाथ मंदिर से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर सामने से निकलती हैं, और चन्द्रभागा नदी में समा जाती है। मान्यता है कि ये सात धाराएं टिण्डणु पुहाल की पकड़ में न आने वाली छिप गई सात परियों के रूप है। बौद्ध मत के अनुसार इन सप्त धाराओं को क्षीर अथवा खीर (दूध) गंगा कहा जाता है। इन सप्त धाराओं का पानी दूध की तरह धवल होता है। चाहे कितनी ही वर्षा हो, बर्फ पड़े अथवा बाढ़ आए, इन सात धाराओं का पानी कभी भी गंदला या मटमैला नहीं होता है। सदैव दूध की तरह धवल ही रहता है।

हर तीसरे वर्ष जुलाई माह में भगवान त्रिलोकनाथ जी की शोभायात्रा मंदिर से सप्तधारा तक निकाली जाती है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन भगवान त्रिलोकनाथ जी अपने पूर्व स्थान पर साथियों से मिलने जाते हैं।

त्रिलोकनाथ मंदिर में भगवान शिव की अप्रतिम सौंदर्य वाली छह भुजाओं वाली सफेद संगमरमर की मूर्ति मंदिर के गर्भगृह में स्थापित है। लेकिन देखने में मूर्तियां अष्ठधातु की बनी लगती है। कहा जाता है कि स्लेटी रंग की मूल प्रस्तर प्रतिमा दशकों पहले मंदिर से चोरी हो चुकी है। भगवान त्रिलोकीनाथ के शीश पर तपस्या में लीन भगवान बुद्ध अथवा अन्नपुरुष की लघु आकार की प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा आकार में भगवान शिव की मूर्ति से अत्यंत छोटी है। गर्भगृह में स्थापित मूर्तियां अमूल्य मणिमाणिक्यों, रत्नों और स्वगर्ण आभूषणों से सजी हैं। पीत, शुभ्र एवं केसरिया रंग के वस्त्रों से ढकी मूर्तियों से अवर्णनीय तेज सी निकलती हुई प्रतीत होता है, जिससे श्रद्धालु अभिभूत होकर अपनी सुध-बुध भुलाकर कुछ क्षणों के लिए भगवान त्रिलोकीनाथ के साथ जैसे एकाकार हो जाता है। लेकिन मंदिर का पुजारी बौद्ध लामा है। ये लामा समय-समय पर कुछ वर्षों के अंतराल में बदलते रहते हैं। मंदिर का प्रवेश द्वार अद्भुत और अनोखा है। मुख्य द्वार के दोनों ओर पत्थर के ऊंचे स्तंभ बने हुए हैं जो छत (सीलिंग) तक जा मिले हैं। प्रवेश द्वार और

इन स्तंभों के मध्ये बहुत संकरी जगह है। इन स्तंभों के बीच अत्यंत संकरे स्थान से होकर जो व्यक्ति गर्भगृह में प्रवेश करता है, अथवा बाहर निकलता है, माना जाता है कि वह सच्चा, ईमानदार और धर्मात्माय है। लेकिन जो इन संकरे द्वारों में फंस जाता है, तो वह पाखण्डी और पापी है। इन्हें पाप और पुण्य के द्वार भी कहा जाता है।

मंदिर में अखण्ड ज्योप जलती रहती है, चाहे कैसा भी समय अथवा ऋतु हो। गर्भगृह में प्रवेश से पहले मंदिर के प्रांगण में स्फोटिक पत्थर (ग्रेनाइट) का बना शिवलिंग है। नंदी और शिव के गण हैं। प्रांगण और गर्भगृह के मध्य भाग में मने यानी धर्मचक्र सजे हैं। इन धर्मचक्रों में भोटी भाषा (प्राचीन पालि भाषा) में मंत्र उत्कीर्ण किये गए हैं। अंदर गर्भगृह में स्थापित प्रतिमाओं का दर्शन करने के पश्चात् बाहर सजावट के साथ बनाए गए इन मने को दाएं हाथ से घुमाना बहुत ही पुण्य का कार्य माना जाता है। इन्हें फिराते हुए मन्नत मांगी जाती है, अथवा वांछित इच्छा की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। बाहर आंगन में हवनकुंड में गड़ाए विशाल त्रिशूल पर आम हिन्दू मंदिरों की भांति मन्नतों के रूप में बंधे धागे, रेशमी कपडों के टुकड़े और खत्तक लटके, बंधे सहज ही नजर आते हैं।

इस मंदिर की विशेषता यह है कि यहां न अधिक आडंबर है और ना ही अधिक बंदिशें अथवा हिदायतें हैं। आम धार्मिक स्थापनाओं के विपरीत यहां न लालची पंडित हैं, ना लोभी पंडे, पुजारी। न भिखारी हैं, न मांगने, ठगने वाले लोग हैं। हैं तो केवल सरल स्वभाव के सीधे-सादे, भोले और धर्मभीरू लोग। छल, कपट से दूर।

गर्मियों के ऋतु में देश के सुदूर क्षेत्रों से साधु-संत त्रिलोकीनाथ के दर्शन हेतु पहुंचते हैं। यहां न केवल देश भर के तीर्थ स्थानों से साधु-संत, बल्कि दूर-दूर से आम श्रद्धालु भी केवल भोले नाथ के दर्शन के लिए आते हैं। वास्तव में यह पहाड़ी प्रदेश विशेषकर लाहुल-स्पीति के लोगों का अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा और भक्ति, विश्वास और आस्था का संगम स्थल है। इससे भी बढ़कर आस्था का स्वर्गिक एवं पावन स्थान है, जहां उनके विश्वास और आस्था के अनुसार उनके इष्ट देवों का वास है। लोगों का इन पर इतनी अटूट आस्था है कि कोई भी धार्मिक कार्य, शुभ अनुष्ठान, पर्व अथवा दुख और शोक के समय भी उस आयोजन, प्रयोजन का रुख सदैव त्रिलोकनाथ दिशा की ओर करके ही सम्पन्न किया जाता है।

यहां भी बारह वर्षों के बाद कुंभ का मेला लगता है। पिछला कुंभ 2015 में सम्पन्न हुआ है। प्रति वर्ष अगस्त माह के दौरान पोरी का मेला लगता है। पोरी में लोग दूर-दूर से और पूरे जिले के साथ-साथ किन्नौर, लेह-लद्दाख से भी श्रद्धालु भक्ति और श्रद्धा भाव से ओत-प्रोत होकर आते हैं। पारंपरिक वेशभूषा में विशेषकर महिलाओं को चोडू (कतर / कदर) में सजे-संवरे हुए देखते ही बनता है। यह मेला आपसी मेल-जोल, गौरवमयी लोक संस्कृति को बचाए रखने तथा धार्मिक परंपरा के संरक्षण और संवर्धन का भी पर्व है। पोरी मेले के पश्चात् लाहुल के लोग अपनी पारंपरिक वेशभूषा में दलों और समूहों में चंबा जिला के भरमौर में स्थित मणिमहेश के दर्शन हेतु कुगती जोत से होकर जाते हैं। कठिन और दुर्गम दरों वाले पहाड़ी रास्तों से लगभग पांच से छह दिनों की पैदल यात्रा के पश्चात् मणिमहेश पहुंचते हैं, जिसे भगवान शंकर का निवास कहा जाता है। भरमौर के गद्दी और लाहुल के हिंदुओं में बहुत अधिक समानता है। कहा जाता है कि लाहुल के हिन्दू चंबा और भरमौर से ही लाहुल में आए थे। यदि तुलनात्माक दृष्टि से देखें तो इन दोनों ही क्षेत्रों की लोक संस्कृति और जीवन शैली एक दूसरी से स्पष्ट गुंथी हुई दिखती है।

रोहतांग में वर्ष 2020 में टनल मार्ग बनकर एवं आवागमन के लिए खुल जाने के बाद से, इस मंदिर में प्रदेश एवं देश के दूसरे राज्यों से आने वाले श्रद्धालुओं, दर्शनार्थियों की संख्या पहले की अपेक्षा कई गुणा अधिक बढ़ गई है। पिछले कुछ वर्षों से अब इस मंदिर का रख-रखाव, पूजा आदि की संपूर्ण जिम्मेदारी यानी प्रशासन का सारा भार हिमाचल प्रदेश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है।

नाग मंदिर कालोनी, शमशी, कुल्लू
हिमाचल प्रदेश-175126
E Mail: shersingh52@gmail.com
मो. 8447037777

कविता

खिड़की के बाहर दिखती पहाड़ी

-अवधेश सिंह

तुम कितने बदले
जैसे बदलता रहता है
यह मौसम
बस नहीं है इस पर किसी का
तुम कितना दूर दूर रहे
जैसे पहाड़ी घरों
की खिड़कियों के नजदीक
गुजरते बादल
फिर भी कभी भी
कभी न बदली
तुम्हारी याद
जो मेरे बगल में आकर
जब तब बैठ ही जाती है बादल दूर सही
लेकिन बारिश से कहां छूटा
पीछा
आंखें हैं न
कभी भी बरस पड़ती है पलकों की कोर को
गीला कर जाती हैं
संभव कहां फिर भी
तुम काश हवा हुए रहते
कि कोई कैद कर लेता तुम्हें
कुछ पल ही सही
अपनी सांसों में
तुम कभी न बदलने वाले
एहसास होते काश
इतना न सताई जाती
फुरसत की वो बेनाम बड़ियां खुदगर्ज पल
जो अंजान में भी ढूंढती हैं
अपनी सी पहचान
सह अनुभूति
लगाव रुझान.....
दर्द में ढूंढती हैं राहतें सकूं आराम..
काश !
सब कुछ बदलता रहता है
कभी तो बदल सकता
वह है जो
मेरा ही विरोधी मेरा मन
कभी भी न बदल सका यह
मेरी भावनाओं की
खिड़कियों से बाहर दिखती
उस पहाड़ी की तरह
जो मेरे अतीत से वर्तमान तक
हमेशा एक सी दिखती है।

फ्लैट नं 6152
एटीएस,
होमक्रॉफ्ट नोबिलिटी नोएडा एक्सटेंशन वेस्ट (उत्तरप्रदेश)
पिनकोड- 201318
सम्पर्क : 94502-13555

युद्ध

-सीमा जैन

दोस्तों ! मेरा इतिहास तो सदियों पुराना है
आदम के साथ मेरा शुरू से याराना है।
कटु और रक्तरंजित मेरा फसाना है
नापसंद करता मुझे सारा ज़माना है
फिर भी इन्सान की एक मजबूरी हूँ मैं
पता नहीं क्यूँ उसके लिए इतना ज़रूरी हूँ मैं
उसके अहम और लालच की तदबीर हूँ मैं
उसके इंतकाम के शोलों से भरपूर हूँ मैं।

क्यूँ कोई कौम अपने झगड़े खुद सुलझा नहीं पाती
प्यार मोहब्बत औ अमन से मसले निपटा नहीं पाती
ये रहस्य मैं आज तक भेद नहीं पाया हूँ
खून खराबे का सारा इल्ज़ाम खुद पर सहता आया हूँ।

वहशत और दहशत का पर्याय बन चुका हूँ
विध्वंस औ नफरत का अध्याय बन चुका हूँ
हिरोशिमा नागासाकी यूक्रेन गाज़ा मेरे ही तो चेहरे हैं
तोप तलवारों बमों के साए हमेशा से मुझको घेरे हैं।

लाखों करोड़ों मासूमों का लहू मेरे सर है
अनगिनत माँओं की बद्दुआ मेरे सर है
जाने कितनों की माँग, कलाइयां की हैं सूनी
धरती की बंजर कोख का इल्ज़ाम मेरे सर है।
ये दुनियां के हुक्मरान, ये तंगदिल अदारे
जमा कर के बैठे जो एटमी ज़खीरे
संभल जाएँ अब तो विदाई दें मुझको
वर्ना धरा को राख कर देंगे मिल कर ये सारे।

390, अर्बन एस्टेट फेज II
निकट गुरुद्वारा, जालन्धर-144022
मो०-98155 81107

फिर से तुम

-डॉ० कुलविंदर कौर

नहीं था
तुम्हारे
होने
का
आभास जब
तब भी
तुम थे।।।
जीवन बना
दुष्चक्र
उलझे जिसमें
हम सब
सब के सब।।
स्थाई भाव बन
साथ रहे
तुम।।।
नेपथ्य से आहट देते
सदा सर्वदा साथ रहते
महसूस होते
रहे तुम
हमेशा..... यत्र तत्र सर्वत्र !!!!
ऐसे भी पल आए
जब भूला
पल पल....
दुख का सागर.... प्रलयंकारी....
धन की तंगी
मन की मंदी
तुम थे फिर से
पल पल
हर पल
'हां' में
'ना' में
धूप में
छांव में

तुम थे
फिर से....
आज अनुभूति ने
पहनी पोशाक अभिव्यक्ति बन
आए हो तुम
तुम ही हो
फिर से तुम
फिर से तुम।।।।

अध्यक्ष, स्नातक हिंदी विभाग,
हिंदू कन्या कॉलेज, कपूरथला

गिरह

--डॉ० कुलविंदर कौर

गिरह होती
विचारों पर तो प्रगतिवादी बन,
खोल लेती कब का
तो
कब का
रिक्त हो चुका
या शायद
साम्यवादी बन
तिक्त हो चुका।
नई राहों की अन्वेषणा, इस नवल जन को
रास नहीं आई।
फिर सोचा
क्या मठ और किले ढहाने ही होंगे.... अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे
कहीं फिर तो कोई
भूल गलती
जिरहबख्तर पहन
बैठी है
तख्त पर
दिल के....
कितने मरासिम थे हमारे उनसे
दिमागी गुहा अंधकार में कोई औरांगउटांग
गढ़ता जाता
विद्रोह के औजार।
कभी कहीं कोई लालटेन पहाड़ों से टिमटिमाती।
फिर कोई लौ सिंदूर तिलकित भाल याद करा जाती।
मन अभी भी साध रहा, वीणा
कहीं कहीं
गांठ थी लगी दिल पर प्रयोगवादी होने के बावजूद
दिख जाता
खोल नहीं पाई छायावादी मन
मुक्तिबोध का पत्थर का पुराना - सा जीना।
भागती मैं दम छोड़
घूम गई कई मोड़।
फिर भी
खतरनाक इरादे
मेरा
पीछा करते।
कोई चोर कागज
जेब में आ धमकता, धमनी और नसों में आक्रोश पैदा करता
कोई अग्नि चक्र है जो जगह बदलता
फिर सोचती
फूल नहीं रंग हैं कुर्बानियां देते
साजिश के खिलाफ
मोह के आरपार
दस्तकें बेशुमार।।
चिर यायावर-सा मन, पतंग-सा उड़ता
चला जाता
निर्विकार।।
एक बूंद
सहसा
समुद्र से उछलती
और निर्वाण
के सारे भेद खोल जाती...

परास्नातक हिन्दी विभाग
हिन्दू कन्या कॉलेज, कपूरथला

बांसुरी की धुन

-डॉ० ज्योति खन्ना

कान्हा !
जब भी मन चाहे,
तुम बांसुरी न बजाया करो।
बांसुरी की धुन
तन-मन में
कई पंख लगा,
उड़ा ले आती है
आसमान से बहुत दूर,
एक स्वप्निल जहां में।
जहां तुम हो,
महारास है,
मुरली की मधुर रागिनी,
झूमती कदम्ब डार है।
यमुना की कलकल,
गुनगुनाती बयार है।

तुम संग दिव्यता
रोम-रोम हर्षाती है
दिक काल और
पूरे ब्रह्मांड की
गति ठहर जाती है।
पर तभी मिट्टी की गंध
हलचल मचाती है।
खींचती है मुझे
उस कर्म कुलाल की ओर,
जहां कई
अर्धनिर्मित पात्रों की छटपटाहट,
अपने रूपाकार पाने को
शोर मचाती है।
तो रसमयी चित्ति
कई खंडों में बट जाती है।

ऐसे में तुम्हीं कहो कान्हा।
इस खंडित चेतना से
मन के जलतरंग पर
कैसे राग का गीत गाऊं ?
कैसे तुम्हारी बांसुरी की धुन में
अपनी सुधबुध भुलाऊं ?

283, अर्बन अस्टेट -2,
सामने लिटल ब्लॉसम स्कूल,
जालंधर।

यथार्थ से दूर

-डॉ. कुसुम डोगरा

यथार्थ को कोने में रख
भ्रम में जी लेती हूं
मैं कड़वा घूंट पी लेती हूं
पंछियों सा उड़ना नभ में
खिलखिलाना अकेलेपन में
सजती संवरती.....
स्वयं को प्यार कर लेती हूं
स्वयं ही खाना....
स्वयं को रिझाना
चांद के साथ बात कर लेती हूं...
फिर क्या बात हो गई
जो मैं देखूं.....
मुझे जीना तो है अपने लिए
आत्म-संतुष्टि के लिए आत्म-अनुभूति के लिए
यह विचार कर
यथार्थ को कोने में रख
भ्रम में जी लेती हूं
मैं कड़वा घूंट पी लेती हूं...।

रिश्तों की गरमाहट

-डॉ. कुसुम डोगरा

रिश्ते नगमें हैं....
इसे गुनगुनाओ
बेकार की रंजिशों में
जीवन जीने की तपन को
अपने हाथों ना बुझाओ
उष्मा बढ़ती है जीवन की
अपनों के संपर्क में
रिश्तों की समीपता से
बुझाना चाहो ग़र हिया से
दुविधा, ईर्ष्या, रंजिश को बुझाओ
इनकी पैठ ग़र हो गई पुष्ट
तो टूट सकती हैं सभी कड़ियां
सहस्र वर्षों के प्रयास की
जो जुड़े थे मोती सागर के
माला एक मोती अनेक
बिख़र सकते हैं एक पल में
रिश्ते नगमें हैं...
इसे गुनगुनाओ
बेकार की रंजिशों में
जीवन जीने की तपन को
अपने हाथों ना बुझाओ...।

लंदन किड्स प्री स्कूल
न्यू गार्डन कालोनी निकट रेणुका मंदिर मिशन रोड
पठानकोट-145001
मो. 9855810942

कुछ दिनों पहले

-श्रीमती शर्मिला नाकरा

जीवंत हो उठता था
मेरे घर का हर कोना
बच्चों के बिखरे खिलौने,
यहां वहां पड़े जूते,
सोफे पर बिखरे कपड़े,
उनकी किलकारियां
उनकी मुस्कुराहट
पूरे घर में दौड़ना भागना
पकवानों की खुशबू,
मानों साल भर के त्यौहार
एक साथ मेरे घर में
मनाए जा रहे थे।
मैं आनंदमग्न हो,
सब चीजों को समेटती.
निहारती, दुलारती
बलाएं उतारती।
अभी तो तृप्त भी
न हो पाई आँखें
और.....

आज मेरे घर का
हर कोना उदास-सा है,
खामोशी सी पसर
गई है चहुं ओर,
कोई शोर नहीं,
कुछ बिखरा नहीं
सब सिमटा है
अपनी अपनी जगह पर।
ये बच्चे पंछियों
जैसे क्यों होते हैं?
जैसे पंछी मुंडेर पर बैठ
कर शोर मचाते हैं,
इधर-उधर आंखें मटकाते हैं
फिर झट से उड़ जाते हैं
पंख फैला कर अपने देश
और छोड़ जाते हैं,
अगले बरस के इंतजार में।

म. नं. 802, 66 फीट रोड,
नज़दीक क्यूरो मॉल, जालंधर हाईट्स,
जालंधर-144005

कहानी

दूध

-श्रीमती चित्रा मुद्गल

मैं जब भी औरतों के बारे में बात करती हूं... इस कहानी के बारे में बात करती हूं... दुख से भर जाते हैं

मैं चाहती हूं आप इस छोटी सी कहानी को पढ़े

और मैं जानना चाहती हूं, आपसे, कि एक स्त्री होकर हम बेटियों के प्रति इतना अन्याय क्यों करते हैं!

यह कहानी अवध नारायण मुद्गल के समय की है।

दूध घर के मर्द पीते हैं।

क्योंकि वे मर्द हैं।

उसका काम है- दूध के गुनगुने गिलास को सावधानीपूर्वक उन तक पहुँचाना। पहुँचाते हुए वह हर रोज़ दूध के सोंधे गिलास को सूंघती है। पके दूध की गन्ध उसे बौरा देती है।

एक रोज़ माँ और दादी घर पर नहीं होतीं तो वह चट-पट कोठरी खोलकर दुधहड़ी से अपने लिए दूध का गिलास भरती है और घूँट भरने को जैसे ही गिलास होठों के पास ले जाती है - घर के उधड़े किवाड़ भड़ाक से खुल उठते हैं। उसके होठों तक पहुँचा गिलास हाथ से छूट जाता है और दुधहड़ी पर जा गिरता है। मिट्टी की दुधहड़ी के दो टुकड़े हो जाते हैं। कोठरी की गोबर- लिपी कच्ची फर्श पर गुलाबी दूध चारों ओर फैल जाता है। निकट आयी भौंचक्क माँ को देख वह थर-थर काँपती पश्चाताप व्यक्त करती माफ़ी माँगती -सी कहती है-

'मैं, मैं...'

'दूध पी रही थी कमीनी ?'

'हाँअ...'

'माँग नहीं सकती थी ?'

'माँगा था, तुमने कभी दिया नहीं... '

'नहीं दिया तो कौन तुझे लठैत बनना है जो लाठी को तेल पिलाऊँ ?'

एक बात पूछें माँ ?' आँसू-भोगी उसकी आवाज अचानक ढीठ हो आयी।

'पूछ !'

'मैं जनमी तो दूध उतरा था तुम्हारी छातियों में ?'

'हाँ... खूब। पर... पर तू कहना क्या चाहती है ? '

'तो मेरे हिस्से का छातियों का दूध भी क्या तुमने घर के मर्दों को पिला दिया था ? '

जी-57, मेधा अपार्टमेंट,
मयूर विहार, फेज-1 एक्स्टेंशन
दिल्ली-110091

थोड़ी-सी छांव

-डॉ. कमलेश भारतीय

ये कैसा सच था ? यह मैं क्या पढ़ रहा था ? यही सच था तो ऐसा क्यों था ? ये सृष्टि की डायरी के मात्र तीन पन्ने उसके जीवन का सच बयान कर रहे थे। सृष्टि एक प्राध्यापिका के साथ एक कवयित्री भी है और हम साहित्यिक गोष्ठियों में एक साथ काव्य पाठ करते, मुलाकातें होतीं और सुनते-सुनाते। इन्हीं गोष्ठियों में सृष्टि को लगा कि मैं उसकी कविताओं को रंग रूप दे सकता हूं और वह पहली बार घर आई और अपनी डायरी मुझे ऐसे सौंप गयी, जैसे कोई मां अपने नवजात शिशु को सौंप रही हो और बोली- सर ! मेरी इन कच्ची पक्की कविताओं को थोड़ा देख लीजिए। यदि आप कहेंगे तो एक कविता संग्रह मैं भी प्रकाशित करवा लूंगी।

इस तरह सृष्टि मेरे लिखने पढ़ने की मेज़ पर अपनी डायरी रखकर चली गयी थी। कुछ दिन डायरी ऐसे ही पड़ी रही, फिर एक दिन जैसे उसकी कविताओं ने चिड़ियों की तरह चहचहा कर मुझे अपनी ओर बुला लिया। मैंने डायरी में से कविताएं पढ़नी शुरू कीं और एक जगह कविताएं न होकर उसकी अपनी ज़िंदगी का सच मेरे सामने था, पूरे तीन पन्नों में लिखा हुआ ! क्या सृष्टि इन्हें डायरी सौंपते समय भूल गयी थी या वह इन पन्नों को मुझ तक पहुंचाना चाहती थी ? मैं कुछ समझ नहीं पाया लेकिन ये पन्ने करवा चौथ जैसे नारी के जीवन के महत्वपूर्ण दिन पर लिखे गये थे, इसलिए बहुत मायने रखते हैं! वैसे तिथि को देखकर पता चला कि ये पत्रे पांच साल पहले लिखे गये थे यानी पांच साल से सरोज कितनी कशमकश में जिंदगी गुजार रही है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। मैं आपके सामने सृष्टि की डायरी के पन्ने रखने जा रहा हूं-जस के तस !

आज इस करवाचौथ पर न मैं खुश हूं और न ही मेरे मन में कोई उमंग है ! न जीने को दिल करता है और न ही मरने को ! मैं अजीब सी स्थिति में जी रही हूं। मन में ढेरों सवाल उठ रहे हैं पर पूछूं तो किससे ? आज मेरी हालत ऐसी है कि किसी से भी अपने दिल की हालत बयान नहीं कर सकती ! बस, एक घुटन में जी रही हूं, जैसे किसी गैस चैम्बर में बंद कर दी गयी हूं। मैं सब बंधन तोड़कर आज़ाद होना चाहती हूं। पर पता नहीं ये परिवार, रीति रिवाज, समाज और मेरे संस्कार रास्ता रोके खड़े हैं मेरा ! सबके बीच बेबस हो जाती हूं। मेरे दो बेटे हैं, जिनसे मैं बहुत प्यार करती हूं। वे मेरे सबसे बड़े बंधन हैं। उनके लिए मैं अपनी जान भी दे सकती हूं। मैं उनसे कभी अलग नहीं हो सकती, वे मेरे अभिन्न अंग हैं।

आज करवाचौथ पर बहुत से बधाई के मैसेज भी आ रहे हैं, जो कह रहे हैं कि हर ब्याहता स्त्री अपने परिवार, कैरियर, खुशियों और अपनी आज़ादी को परिवार पर कुर्बान कर देती है, कर देनी चाहिए, ऐसे भी संकेत हैं। यदि स्त्री इन हदों के बाहर जाती है तो उसके अपने ही उसे लौटने व सही राह पर चलने की हिदायतें देने लगते हैं ! यही नहीं उसे उसके इरादों को तोड़ने की कोशिश करते हैं।

क्या बताऊं, ईश्वर ने मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ पवित्र बंधन में बांधा, जो बिल्कुल मुझसे विपरीत है जैसे कालिदास व विलोम ! न मेरे जैसी परवरिश न ही मेरे जैसे विचार ! दो विपरीत ध्रुव हों जैसे हम दोनों ! मुझे कोई सुकून नहीं मिला आज तक ! मैं घुट घुट कर जी रही हूं, जीती जा रही हूं। बस समय काट रही हूं। काटे नहीं कटते दिन, ये रात जैसी हालत है मेरी।

देख रही हूं कि आज अखबार में भी स्त्री के लिए करवाचौथ के महत्त्व पर पन्ने भरे पड़े हैं। करवाचौथ पर स्त्री को सजने-संवरने के टिप्स दे रखे हैं पर मुझे किस, सजना के लिए सजना है जो मैं इन पन्नों को पढ़कर समय क्यों खराब करूं? पुरुष तो इतना ही चाहता है कि उसकी पत्नी सजे संवरे और दिन भर भूखी रहकर उसके नाम की माला जपती रहे। हर काम पति की मर्ज़ी से करे। वही काम करे, जिसमें पति की खुशी हो। बस, उसके कदमों पर चले, ज़रा भी इधर-उधर न हो ! स्त्री का प्रभुत्व पुरुष को कभी स्वीकार नहीं, सदियों से! वह करवाचौथ जैसे संस्कार और परंपरा के नाम पर स्त्री को उलझाये रखना चाहता है। हम महिलाएं खुद कमा रही हैं लेकिन पति के उपहार की राह देखतीं, भूखी रहकर दिन काट देती हैं। पुरुष समाज ने बचपन से ही ऐसी सोच बना दी है हमारी ! ये संस्कार हमारे बंधन बनते चले गये। कोई भी महिला इन संस्कारों से बाहर नहीं जा सकती और जाये तो परिवार टूट जाये ! स्त्री अपने पति के इशारों पर नाचती है, समाज में पतिव्रता दिखाने के लिए।

हे ईश्वर! मुझे इन बंधनों से मुक्ति दे दो !!

ये कौन सी सृष्टि मेरे सामने थी ? ये सृष्टि का कौन सा चेहरा था ? साहित्यिक गोष्ठियों में वह बहुत शांत सी, हल्की सी मुस्कान बिखेरती मिलती थी। फिर यह सृष्टि मन की किन गुफाओं में कहां छिपी बैठी थी और कब से ? सच में हर इंसान के अनेक चेहरे होते हैं। सृष्टि का यह चेहरा मुझे झकझोर कर रख गया। वह गोष्ठियों में थोड़ा सकुचाती हुई आती थी भाग लेने, जैसे कोई चोरी कर रही हो और पकड़े जाने के डर से परेशान भी रहती हो। तभी वह बार बार कहती थी कि सर। संडे को रखा करो गोष्ठियां छुट्टी वाले दिन रखी गोष्ठी में वह सहज रहती थी लेकिन उसके शांत से चेहरे के पीछे इतने तूफान उमड़ते रहते होंगे, यह भेद आज ही खुला। मन की गुफाओं में हर आदमी कितना कुछ छिपाये रखता है। फिर मैंने सृष्टि की कविताओं के विषयों पर ध्यान दिया तो और भी हैरान हो गया! सृष्टि की कविताओं में असल में यही तीन पन्नों वाली बात बार-बार आ रही थी- किसी बच्ची के साथ जन्म के बाद से ही भेदभाव समाज में, परिवार में और फिर यह भेदभाव शादी ब्याह के बाद भी बढ़ते चले जाना! चाहे मायका हो या ससुराल नारी के मन की बात कोई सुनने को, मानने को तैयार नहीं ! न उसकी रुचियों का सम्मान और न ही उसकी भावनाओं की कद्र करे तो क्या करें ? जाये तो जाये कहां ? सृष्टि सचमुच घुट-घुट कर जी रही थी, पल-पल मर रही थी लेकिन बेटों से प्यार उसे जीने के लिए एक रास्ता, एक खूबसूरत बहाना बना हुआ था ! ये कविताएं उसके करवाचौथ वाले दिन लिखे तीन पन्नों की देखा जाये तो काव्यमयी अभिव्यक्ति कही जा सकती हैं। एक नन्ही बच्ची प्यार का थोड़ा सा आंचल मांग रही है, एक नारी अपने मन का करने की आज़ादी मांग रही है और किसी ऐसे अनदेखे संसार की कल्पना में खोई हुई है, जहां उसे अपने मन का करने की आज़ादी होगी! ये कविताएं सृष्टि की छिपी हुईं, आधी अधूरी चाहतें कही जा सकती हैं ! नारी संघर्ष करे तो कैसे ? जैसे जीने की एक राह तलाश रही थी सृष्टि !

आखिर मैंने डायरी में लिखीं सभी कविताएं पढ़ लीं और सृष्टि को बता दिया कि कविताएं पढ़ ली हैं और फुटनोट दे दिये हैं, किसी भी दिन आकर ले जाओ अपनी डायरी ! सृष्टि ने कहा कि सर, किसी छुट्टी वाले दिन आ जाऊंगी और वह एक दिन फोन करके आ भी गयी !

थोड़े से जलपान के बाद मैंने उसकी डायरी के वे पन्ने खोलकर सृष्टि के सामने रख दिये !

सृष्टि को पन्ने देखते ही जैसे कुछ याद आया, जैसे उसकी चोरी पकड़ी गयी हो और उसके चेहरे पर भी संकोच और लाज के रंग दिखने लगे ! कुछ देर ? बाद संयत होकर बोली- सर ! बस, उस दिन मैंने अपने मन का गुबार अपनी सखी डायरी को सुना दिया पर आपको डायरी देते इन पन्नों की ओर ध्यान न गया मेरा ! माफ कीजिये !

पर ऐसा लिखना ही क्यों पड़ा सृष्टि ?

- मेरे अंदर का पत्रकार जाने कहां से निकल आया बाहर एकदम

- सर! ये बात मेरे बचपन से जुड़ी है।

- कैसे ?

- से !

- मैं नौवीं में पढ़ती थी और एक रात जब हम भाई बहन खा पीकर सो गये लेकिन मैं अधसोई सी थी, तब मेरे बाबा मां को कहने लगे कि बेटियां बड़ी हो गयी हैं, अब इनकी शादी करेंगे नहीं तो क्या पता क्या दिन दिखायें! मैंने मन ही मन प्रण कर लिया कि मैं अपने बाबा का सिर कभी नीचा न होने दूंगी और फिर दसवीं पढ़ते पढ़ते मेरी और बड़ी बहन की एक ही घर में शादी हो गयी, ये दोनों ? सगे भाई थे। मैं पढ़ना चाहती थी लेकिन शादी कर एक तरह से मेरी राहें बंद करने की कोशिश की बाबा ने।

- फिर ? बचपन की शादी कैसी लगी ?

- बिल्कुल वैसी ही जैसी महात्मा गांधी ने लिखा कस्तूरबा के बारे में कि अच्छे-अच्छे

- कपड़े मिलेंगे और खेलने के लिए एक साथी !

- तो मिला फिर साथी ?

- नहीं ! ये प्लस टू पढ़े थे और दिन भर दोस्तों के बीच बिताकर आते थके हारे ! नयी नवेली दुल्हन का चाव नहीं मन में! फिर इनकी नौकरी लग गयी फौज में ! कभी लम्बी छुट्टी आते पर साथ आती मेरी सौतन शराब !

- फिर आगे कैसे पढ़ी सृष्टि ?

– मैंने मना लिया ससुराल वालों को और कॉलेज में एडमिशन ले लिया। इससे मैं सासु की झिड़कियों से भी बच गयी। सासु यहां तक कहती कि इसे तो झाड़ू लगाना भी नहीं आता और घूंघट भी ढंग से नहीं निकालती। ये आते तो कॉलेज थोड़ा मिस होता बाकी मैं ग्रेजुएशन ही नहीं बीएड भी कर गयी और प्राइवेट एम.ए. भी! बीच में दो प्यारे प्यारे बेटे भी सौगात की तरह आये

– कभी साथ नहीं गयी सृष्टि ?

– गयी ! एक बार जिद्द करके गयी कि हमें भी अपने साथ ले चलो और कुछ समय रही पर बच्चों की पढ़ाई एक जगह टिक कर करवाने के लिए यहीं लौट आई और देखो बच्चे बन भी गये अच्छी जॉब पर भी लग गये हैं!

– अब क्या फिक्र है सृष्टि ?

– मेरी वही सौतन शराब इनके साथ लौट आई है रिटायरमेंट के बाद। ये मेरे पास होते हुए भी जैसे मेरे पास नहीं होते ! ऊपर से शक का कीड़ा बढ़ता ही जा रहा है और बस, मैं तंग आ गयी इस सबसे और लिख डाले ये पत्रे, कह डाला डायरी सखी को अपना सारा दुख दर्द ! एकबार तो मन हल्का कर लिया, सर पर आज...

– शक कैसा ?

– बहुत शक्की हैं मेरे हसबैंड, सर ! अब स्कूल में जॉब कर रही हूं तो किसी क्लीग का दफ्तर के काम से फोन आयेगा और ये ढेरों सवाल करने लग जायेंगे ! अब गोष्ठियों में आऊं तो सवाल कौन हैं तेरे वहां ? दूसरे दिन का अखबार दिखाती हूं कि ये थे मेरे वहां !

फिर सृष्टि की आवाज़ लड़खड़ाने लगी और फिर उसकी आंखें में आंसुओं की धारा बहने लगी! मैंने उसे रोका नहीं लेकिन मेरा पत्रकार शर्मिंदा होकर रह गया, शायद वह लक्ष्मण रेखा लांघ गया था ! सृष्टि के जीवन में इस तरह झांकने का मेरा कोई अधिकार नहीं थ। इसलिए भाग गया और मैं एक संवेदनशील व्यक्ति बन कर लौटा और सृष्टि के कंधे थपथपाते पूछा – अब क्या सृष्टि ?

– बस, सर थोड़ी सी छांव चाहिए, पूरा जीवन धूप में नंगे पांव चलते चलते काट दिया !

पांवों पर तो नहीं मन पर न जाने कितने बोझ बढ़ते गये ! उफ्फ् !

मैं कुछ कह न सका और सृष्टि आंसुओं को समेटती, डायरी उठाकर चल दी !

–1034 बी, अर्बन एस्टेट 2,
हिसार–125005 (हरियाणा)
मो. 9416047075

पंछी का रुदन

- डॉ० वीणा विज उदित

'अरे रे रे रे यह तोता घर में आ गया है !'

घर के भीतर तोता उड़ता देखकर मैंने हैरानी से मिनी की सहेली जया से कहा। अस्पताल में अचानक मिलने पर जया को उसके घर छोड़ने गए तो उसने कहा कि चाय पीकर जाएं और हम भीतर चले गए थे। मेरे घुटनों में दर्द था तो उसका फ्रोजन शोल्डर हो गया था। उसका घर रास्ते में ही था। अचानक देखा कि एक तोता उड़ता हुआ आकर दरवाजे की चौखट पर बैठ गया है। जया हंस पड़ी, और मुझसे बोली,

आंटी, इसे घर में ही रहना है, पहले पिंजरे में रखा था, अब घर में खुला छोड़ दिया है- अब कहीं उड़कर नहीं जा सकेगा, यह पर कटा पंछी है।'

जाने क्यों ऐसे लगा, मैंने उसके फड़फड़ाने में उसका रुदन सुना है जो मेरे अंतस को बेध गया है। उस उड़ान में ऊर्जा नहीं बेबसी थी। तभी से मेरे भीतर 'पर कटा' 'पर कटा' गूंज रहा था। पंछी जब पिंजरे में कैद हो जाता है-- उसकी उड़ने, बाह्य संसार में विचरने की औकात कहां रह जाती है? उसके पर कतर दिए जाते हैं! या वह समझ लेता है कि अब उसके पर काट दिए गए हैं। उसे दिन- रात नील गगन का प्रकाश तो दिखाई देता है लेकिन वहां विचरते पंछियों के साथ उड़ान भरने की उसकी प्रबल इच्छा भीतर ही भीतर त्रास बनकर उसे वेदना और संताप देती रहती है क्योंकि नीड़ के भीतर सिमट जाने का दर्द उस परिंदे से ही पूछो जिसकी उड़ान की हद में कभी पूरा आसमान था। अपने आप को मैं उसी परिंदे की तरह महसूस करने लग गई थी।

'पर कटा' पंछी ही तो हूं मैं भी !

मैं भी तो खामोशी को ओढ़े, अपने रुदन को आंखों की कोरों में छुपा - भीतर जाकर एकांत में कमरे की छत को निहारती पलंग पर लेट जाती हूं। यही दिनचर्या है मेरी। अपनी तमन्नाओं की गठरियां बांधकर मन की परछत्ती पर रख दी हैं मैंने। यही मेरा पिंजरा बन गया है अब। मैं कहीं भी ना जा पाती हूं ना कोई मुझे ले जाता है, जब तक कि कहीं जरूरी ना हो। मेरी ही बेटी है लेकिन अपने बच्चे अपने परिवार में दिन-रात जुटी रहती है। मां की ओर कोई ध्यान ही नही। माना कि गृहस्थ एक बहती नदिया है जिसने आगे ही बहते जाना है। लेकिन पहले भी तो परिवार होते थे, बड़ के पेड़ की तरह इंसानों, जानवरों, पंछियों सभी को आसरा देते थे। अब 'बोनज़ाई' पौधों का जमाना है ना! परिवार भी बोनज़ाई हो गए हैं। आज के युग में किसी के पास समय ही

नहीं है। घर बड़े हो गए हैं लेकिन उनमें जगह कम हो गई है क्योंकि घर में होते हुए भी हर कोई अपने कमरे में बंद है। सबकी अपनी प्राइवेसी है। कितना भी चीख पुकार लो कोई सुनने वाला नहीं है!

एक बार कमरे में पैर फिसल गया तो घुटनों की दर्द के मारे मैं उठ नहीं पाई। कितनी ही कोशिश करी लेकिन घुटनों का दर्द पैर ही नहीं टिकने देता था। बहुत जद्दो जहद करने पर कोई घंटे भर बाद मैं पलंग के पावे को पकड़कर उठी और हिम्मत कर पलंग पर आई ! अकेली बैठी रोती रही। क्योंकि फोन दूर पड़ा था तो जोर-जोर की आवाजें भी लगाई, तालियां भी बजाईं। लेकिन किसी ने कुछ नहीं सुना। ना ही कोई आया। मैंने भी चुप्पी साध ली थी।

बहुत समझाया था मेरी सहेली रश्मि ने,

'सुन शशि, मिनी के पापा के जाने के बाद अपना घर ना बेच। अपना ठौर- ठिकाना रखा रहने दे।'

लेकिन मैंने एक नहीं सुनी थी उसकी। अपने घुटनों के दर्द के कारण मैं अकेली रहने से डर गई थी। इसलिए मैंने कहा, 'मेरी तीन-तीन बेटियां हैं। जान छिड़कती हैं मुझ पर ! मुझे अकेली नहीं छोड़ेंगी। उन्हें सारी समझ है कि पापा मम्मी को कभी अकेले नहीं रखते थे। हर जगह साथ लिए घूमते थे। रश्मि बहन जी ! मेरी बेटियां भी पापा के अचानक जाने से अधमरी हो गई हैं। अब मां को देखकर ही जी पाएंगीं ना। मैं उनके पास ही रहूंगी यहां अकेले कैसे रहूंगी ?'

जीवन साथी के चले जाने से मैंने अपना बसा बसाया घर बेचने में देर नहीं लगाई और सारा सामान डिस्पोज आफ करके मिनी के घर आ गई थी। हां, लकड़ी की एक बड़ी अलमारी मैं अपने साथ ले आई थी, जो मेरे कमरे में मुझे अतीत से जोड़े रखती थी।

ताजी ताजी चोट थी, तो सब बहनें इकट्ठी हो जाती थीं मिनी के घर अंजू और सोनिया भी। धीरे-धीरे सब अपने परिवारों में व्यस्त होती चली गईं। अंजू के ससुर बलदेव जी भी तो अकेले हैं कुछ वर्षों से उसकी सास भी उन्हें तन्हा कर गई थी। अंजू ने अपनी बेटी का रिश्ता तय किया है। उसे शादी की तैयारियां करनी थी फिर दूसरे शहर से रोज रोज आना कहां हो पाता है।

इधर सोनिया की दोनों बेटियां स्कूल जाती हैं घर में सास-ससुर भी हैं। पति भी सवेरे दुकान जाता है। वहां खाना भेजना होता है दुकान पर। बच्चों को ट्यूशन क्लासेस से लाना - ले जाना होता है। वह तो अब कम ही आती है। फोन भी कभी-कभार कर लेती है वह भी जल्दी में। क्या ऐसी होती है बेटियां ? लोग यूं ही बहुओं को दोष देते हैं। मेरी आशाओं के विपरीत हो गया यह तो। मिनी के भी यही हाल हैं। मुझ पर भी बंदिशें लग गई हैं अनजाने में किसी के पास समय नहीं है आज के युग में! प्यार की प्यासी मेरी आत्मा एक ऐसा आकाश ढूंढती रहती है, जहां मेरे ख्यालों की परवाज कोई सुने, उसे महसूस करे।

मायूसी की चादर ओढ़ मैं भीतर पलंग के उस कोने पर जाकर बैठ जाती हूं, जो मेरे वहीं बैठे रहने से कुछ दबकर उलाहना देता लगता है। लेकिन करूं भी क्या मेरे पांव अभ्यस्त हो चले हैं वहीं रुक कर उसी कोने पर स्वाधिकार पाने को। वहां मैं पीठ टिकाकर बैठने की मुद्रा में सामने कांच की खिड़की से दिखते पौधों पर मन ही मन में रिसर्च करती रहती हूं। उसमें भी समय बीत जाता है। मेरे पास कुछ किताबें हैं बस उन्हीं में से थोड़ा-बहुत पढ़ भी लेती हूं बीच-बीच में। पढ़ने की आदत भी खत्म हो गई है अब तो। सामने किताब खुली पड़ी होती है और मैं तुम में खो जाती हूं!

अब जीवन का अर्थ 'वक्त' को बिताना है और वक्त के सम्मुख हम सब बौने हो जाते हैं। आलोक ! तुम चले गए मुझे छोड़कर ! हां जाना तो था ही! हम दोनों बात करते थे कि बुढ़ापा आने पर देखें हम दोनों में से कौन पहले जाएगा ? लेकिन बुढ़ापा तो आया ही नहीं। उससे पहले जाने की तो कभी बात ही नहीं हुई थी। फिर क्यों ? क्यों चले गए ? तुम !

कभी ख़ामोशी भी आवाज देती लगती है। तुम्हारी सदाएं आती हैं। याद करती हूं तुम्हें और रो पड़ती हूं विफ़र के। वक्त की लहरें पैरों के नीचे से रेत चुरा के ले जाती हैं। वक्त की अगली लहर फिर यही दोहराने आ जाती है, और वक्त वहीं खड़ा रह जाता है ! बौना का बौना !!

सड़क पार सामने वाले घर के प्रांगण में लगे मोरिंगा के पेड़ पर हवा का बहाव आया और पत्तों के साथ-साथ मोरिंगा की फलियां (ड्रमस्टिक) भी डोलने लगीं तो मुझे तुम्हारा पसंदीदा मोरिंगा के पत्तों का साग और आटे में डालकर उसकी परौंठियों का स्वाद याद आ गया। हम कभी-कभी मिनी से मोरिंगा के पत्ते मंगवाया करते थे न। जब से मिनी के घर रहने आई हूं तो भूल ही गई हूं। तुम बिन स्वाद ही भूल गए हैं सब खाने के!

पितृ सत्ता में मां बाबा का प्यार दुलार जीवन में रस घोलता है, तो पति सत्ता में पति का प्रेम व लाड़-प्यार ! अपनी बेटियां जो मैंने जाई हैं,वह भी अब पराई लगती हैं। कुछ भी कहने से पूर्व दस बार सोचना पड़ता है। कहीं बुरा ना मान जाएं या मुझे ही उपदेश न सुनाने लगें। मां-बाप की डांट खाई जाती थी। पति से भी रोज किसी न किसी बात पर कुछ खटपट हो जाती थी फिर हम एक हो जाते थे। लेकिन बेटियों का कुछ कहना दिल को चोटिल क्यों कर जाता है ? बेचैन आत्मा-सी बाद में बिफरती रहती हूं कि मैंने क्यों कुछ कहा ? वह कहती हैं,

'हम गृहस्थी वाली हैं मां ! क्या अब भी आप हमें सिखाओगे।'

'तेरे भले के लिए कहा था बेटा ! मुझसे देखा नहीं गया कि मलाई लगा भगोना बाई ने मांजने को रख दिया। '

'आप जाकर भजन कीर्तन सुनो। इधर ध्यान मत करो टीवी लगा लो। काम वाली काम छोड़ गई तो पता चलेगा आटे दाल का भाव!'

ऐसी बातें तीर-सी चुभती हैं। अरे चौबीस घंटे कौन भजन-कीर्तन करता है? नित नेम कर लिया बहुत है। घर में कुछ अनचाहा घटा तो अपना घर समझ कर चेता दिया, तो बात सुन ली। अपना दिन तो गया ना !

बच्चों के आगे जुबां नहीं खुलती

दिल में रस्सा कशी बाकी है!

कहने को मेरी बेटी है लेकिन यह पूर्ण रूपेण एक अन्य स्त्री है जिसके अपने विचार, अपनी सोच है उसकी वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल। जो भावनात्मक स्तर पर मां की स्थिति पर गौर नहीं कर पाती है। बीच में कोहरे की चादर आ जाती है। उस पार नहीं दिखता कि उधर सुबह बेचारी दुबकी हुई बैठी है। कोहरे की चादर हटे तो वह खिल कर चमके। उस सुबह के फूल जो कोहरे के कारण अखि मंदे पड़े हैं साहस नहीं कर पा रहे कि पूछें अभी तक सुबह क्यों नहीं हुई है? क्योंकि वह बोल नहीं पा रहे हैं। लेकिन कह बहुत कुछ रहे हैं। फर्क यह है कि वे शिकायत दर्ज नहीं करा रहे। ऐसी दर्द की कड़ियों में मुझे अपनी साझेदारी लगती है।

उदासी का बवंडर छाने पर अपने कमरे में जा मैं अपनी अलमारी को बाहों में भर लेती हूं, अपनेपन का एहसास होता है। दोनों पल्ले मेरी गिरफ्त में आ जाते हैं। तब ऐसा सुकून ऐसी शांति मिलती है जैसे कोई अपना (शायद आलोक) बिछड़ा हुआ मिल रहा हो। उसी में मेरा अतीत जीवंत है।

हर घटित को स्मृति में पुन: रचते समय हम वहीं पहुंच जाते हैं। यादों के अंधड़ चल पड़ते हैं-जब मैं अलमारी खोल कर खड़ी हो जाती थी तो आलोक चुपचाप पीछे से आकर बोलते थे,

'फिर इसी उलझन में हो ना की क्या पहनूं ? अरे भाई ना हम कहीं जा रहे हैं ना कोई हमारे घर आ रहा है। फिर क्यों परेशान हो। तुम कुछ भी पहनो सब जंचता है तुम पर !' (मन ही मन प्रसन्न होते हुए)

'आप भी ना सोचने नहीं देते कुछ। अरे आज शनिवार है मैं काले प्रिंट का सूट पहन लेती हूं। देखा ना झट फैसला हो गया मेरा।'

अतीत पुकार लेता है और मुझे लगता है अभी आलोक कहीं गए हैं, बस आने ही वाले हैं। अभी कानों ने उनकी आवाज सुनी है। इसी में मन के कोमल ताने-बाने उलझ कर रह जाते हैं।

आलोक की पहली बरसी पर 'वरीना' हुआ ! साल बीत गया था। मन के अंधेरे कोनों में व्याप्त पीड़ा उफान मारने लगी। सभी रिश्तेदार और पहचान वाले पहुंचे। मैं भीतर से निस्संग अकेली थी। मुझे अपने संवेगों का चेत था। मैंने शांत मुखौटा लगा रखा था। मिनी और अमर ने बढ़िया इंतजाम किया था पूजा और खाने-पीने का। अंजू भी आई थी तो बोली, 'मिनी, अब मां को मैं ले जा रही हूं। कुछ दिन वहां रहेंगी तो मन बदल जाएगा और मैंने शादी की तैयारी भी तो करनी है। मां घर संभाल लेंगीं। मिनी ने हामी भर दी तो मैंने झट दोपहर को अपने इस नए आलणे (घोंसले) को बाय-बाय कर दी। कि वापस आकर उससे बातें करूंगी। करीब तीन घंटे बाद हम चंडीगढ़ उसके घर पहुंचे तो 'आईये समधन जी!' कहकर अंजू के ससुर बलदेव जी ने स्वागत किया। उन्हें देखते ही मेरी आंखें छल-छला आई उनके अपनत्व से सराबोर स्वागत से। लगा धूप मानो कुछ गीली सी हो गई है मेरी आंखों की गीली कोरों की तरह ! हम दोनों आलोक की कमी को महसूस कर रहे थे। अपने पास पड़ी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया तो मैं उनके स्नेह से सिक्त भाव को ग्रहण करती वहीं बैठ गई। इतने में दामाद जी मेरा सूटकेस एक कमरे में ले गए-- लगा, शायद यही इस 'पर कटे पंछी' का अगला घोंसला होगा।

अब तो नाश्ते से लेकर रात के खाने तक बलदेव जी का साथ हो गया था। अंजू शॉपिंग के लिए जाती थी तो मैं पीछे से खाना और घर के काम करवा लेती थी कामवालियों से। यहां मुझे समय का पता ही नहीं चल रहा था। अंजू की एक दो सहेलियां मीरा और अलका भी कई बार आ जाती थीं। अलका बहुत बोलती है। वो आते ही कहती, 'तो आंटी गपशप चल रही है!' मैं मुस्कुरा देती।

कभी हम चाय पी रहे होते थे तो वह कहने से नहीं चूकती थी,

'बढ़िया समय कट रहा है ना आंटी जी ? बोर तो नहीं हो रहे हो आप ! नहीं तो मैं अपने घर ले चलूं साथ अपने घर घुमा लाऊं। क्यों अंकल जी ! आंटी जी का ध्यान रखना।' मैं मुस्कुरा कर उसे कहती,

'सब ठीक है बेटा! थैंक यू !'

शनै:-शनै: दिन बीते और मेरी प्यारी गुड़िया 'आन्या' की शादी के शगुन प्रारंभ हो गए। सारे मेहमान आ रहे थे। मिनी और सोनिया भी सपरिवार आई। घर और किचन संभालने की मेरी सख्त ड्यूटी थी जिसे मैं निभा रही थी बड़े प्रेम और उत्साह से। मुझे कहीं नहीं जाना होता था। मैं तो घबरा रही थी कि शादी के दिन तैयार कैसे होंउंगी ! खूब गाना बजाना और चिल्ल - पौं मची हुई थी। मैंने गोल्डन बॉर्डर की क्रीम कलर की साड़ी पहन ली थी मैरिज पैलेस जाने के लिए और चुपचाप मिलनी के गहनों के डिब्बे लिए वहां एक जगह जाकर बैठ गई थी। (घुटनों के कारण चल जो नहीं पाती थी)

देखती हूं कि सामने से खूब सजी-धजी अलका और नीरू भी आ रही हैं। अलका आते ही बोली, 'आंटी जी आप तो प्यारी लग रही हैं ! अंकल जी कहां है? आपने उनको कहां छोड़ दिया ? '

बड़ा ऊटपटांग-सा लगा मुझे उसका यह वाक्य। मैं चुप रही। लांवा - फेरे (भंवरों) के समय घर के सब लोग बैठे थे तो बलदेव जी भी हम सबके साथ कुर्सी पर आकर बैठ गए। ना जाने कब अलका ने मेरी और बलदेव जी की बात करते हुए की इकट्ठी तस्वीर खींच ली, हमें मालूम भी नहीं हुआ। शादी की गहमा-गहमी के बाद जब मैं वापस मिनी के घर जाने की तैयारी कर रही थी, तो मुझे लगा था बलदेव जी का मन उदास हो रहा है क्योंकि यह स्वाभाविक है कि हम उम्र का साथ तसल्ली बख़्श होता होगा।

अकेले पहाड़-सा दिन काटना सबको कठिन लगता है। तभी अचानक नीरा और अलका आ गई अंजू की उदासी दूर करने क्योंकि विदाई के बाद अंजू बहुत उदास थी। अंजू ने उनको बताया कि मां कल जा रही हैं। दीदी लेने आ रही हैं। इस पर वह

तपाक से छूटते ही बोली, 'अरे, आंटी कैसे जा सकती हैं हमारे अंकल जी को छोड़कर? दोनों का सारे दिन का साथ है! (फिर तस्वीर निकाल कर फोन पर दिखाते हुए बोली) देख ना दोनों की फोटो, कितने प्यारे लग रहे हैं दोनों मुस्कुरा कर बातें करते हुए।'

मेरा काटो तो खून नहीं! मैं हक्की-बक्की उसकी ओर देखते हुए कुछ बोलते ही लगी थी कि अल्फ़ाज़ मेरी जुबान की सीढ़ी पर चढ़ते चढ़ते फिसल गए और भीतर के अंधकार में जा गिरे।

उसकी बात सुनकर अंजू भी हैरान रह गई। गुस्से से उसको डांटते हुए बोली, 'क्या बकबक किये जा रही है अक्कू तूं ! बिना सोचे-समझे। तेरा दिमाग दाएं-बाएं खूब घूमता रहता है चल जाकर अपना काम कर। फालतू की बातें मत कर।' (फिर मुझे बहलाते हुए) बोली, 'मां, आप इसकी फालतू की बकवास मत सुनो चलो, चलकर थोड़ा भीतर आराम कर लो। थक गए होंगे आप इन दिनों, बहुत काम किया है आपने।'

अपनी चुप्पी व विचारों की गहराई से मैं स्वयं ही डर कर लाड़-प्यार और संस्कारों की एक ठंडी रस्म निभा रही थी। मैं भूल गई थी कि इस पिंजरे के पंछी पर अब सामाजिक बंदिशे लग गई हैं। हां मुझसे गलती हुई थी एक हम उम्र को देखकर उससे कभी- कभार हंसने-बोलने की! रिश्तों के उधड़ने के डर से मैं भीतर ही भीतर घुट कर रह गई थी। लेकिन मेरे कान पंछी का रुदन सुन पा रहे थे....।

469-आर, मॉडल टाऊन,
जालंधर-144003
मो. 96826-39631

स्वाभिमान की ठोकर

-डॉ० संजीव कुमार

कम्पनी से छुट्टी होते ही ध्रुव घर के लिए निकला ही था कि अचानक वर्षा की फुहारों का भी श्री गणेश हो गया। दोपहिया पर सवार वह कुछ दूरी तक भीगता रहा, फिर पास वाली दुकान में रूक गया। अचानक मोबाइल की घण्टी घनघना उठी। मां की आवाज थी। पूछा, कहां पहुंच गए ? कितनी देर तक घर आ जाओगे ? घर पर कुछ मेहमान आने वाले थे इसलिए मां ने फोन किया था। सुनते ही ध्रुव के मन में लडडू फूटने लगे। उसे समझने में देर न लगी कि अवश्य कोई लड़की वाले ही शादी के सिलसिले में पहुंच रहे होंगे। वर्षा की बूदें थमतीं उससे पहले ही ध्रुव वहां से ऐसे रफू चक्कर हो गया जैसे मानो किसी बदमाश के पीछे पुलिस लगी हो और उसे डर सता रहा हो।

ध्रुव एक मध्यमवर्गीय नवयुवक था। उसके पिता सेठ रामधन अम्बाला में एक सरकारी कार्यालय में वरिष्ठ सहायक के पद पर तैनात थे। अनुभवी, सरल स्वभाव के धनी तथा कट्टर ईमानदार जाने जाते थ। परिवार में पत्नी कलावती, बेटा ध्रुव तथा बेटी सुप्रिया थे। ध्रुव एम. ए. तक की पढ़ाई कर प्राइवेट कम्पनी में सहायक के पद पर था। सुन्दर चेहरा, मोटी एवं काली आंखें, लम्बा कद, सुडौल शरीर तथा पतली मूछें और आयु यही कोई 28 वर्ष थी। रंग बिरंगी लम्बे बालों की लटें हमेशा बिखरी हुई दिखाई पड़तीं। विदेशी व्यंजनों के शौकीन ध्रुव पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता। सोच और विचार भी आम लोगों से कम ही मेल खाते थे।

ध्रुव भीगते हुए घर पहुंचा कि पिता सेठ रामधन ने उसे लड़की वालों की घर आने की सूचना दे दी। मां कलावती तथा बेटी सुप्रिया भी प्रसन्न थीं। लड़की वाले कुण्डली का मिलान कर चुके थे। उन्होंने अपनी बेटी संगीता के लिए ध्रुव का चयन कर लिया था। घर पर मेहमानों का बेसब्री से इंतजार था। तभी दरवाजे ऊपर लगी घण्टी बज उठी। किसी आगन्तुक की सूचना का संकेत था। मेहमानों ने दरवाजे पर दस्तक दी। माता-पिता बेटी संगीता के लिए ध्रुव के साथ रिश्ता पक्का करने पहुँचे थे। सेठ रामधन व कलावती ने मेहमानों का सलीके से स्वागत किया। सभी चुपचाप बैठे थे तभी रामधन ने शांति भंग करते हुए अतिथियों का कुशलक्षेम पूछ लिया। धीरे-धीरे वार्तालाप शुरू हो गई।

25 वर्षीय संगीता सुन्दर, सुशील तथा कोमल हृदय कन्या थी। उसका आत्मविश्वास चेहरे पर स्पष्ट झलकता दिखाई देता। दोनों परिवार पहले भी एक बार मुलाकात कर चुके थे। ध्रुव और संगीता भी खुश थे। एक दूसरे को पसन्द करने लगे थे। मौसम ठण्डा था। सभी गर्म चाय की चुस्कियां ले ही रहे थे तभी संगीता के पिता चौ0 प्यारेलाल ने सकुचाते हुए रामधन से एक-दो बातें स्पष्ट करनी चाहीं।

चै0 प्यारे लाल : देखिए रामधन जी, हम लड़की वाले हैं। इससे पहले कि हम दोनों परिवार शादी का दिन 16 जनवरी 2022 तय कर लें, मेरे मन में एक-दो प्रश्न हैं, अगर आप इजाजत दें तो मैं बात रखूं।

सेठ रामधन: जी अवश्य, अवश्य कहिए। हम भी लड़की वालें हैं तथा आने वाले दिनों में बेटी सुप्रिया की शादी तय करने वाले हैं। आप बेझिझक कहिए।

चै0 प्यारे लाल - जी, हम सभी एक ही परिवेश में रहते हैं। प्रत्येक माँ-बाप अपनी बेटी की इच्छानुसार सुख सुविधा हेतु कुछ न कुछ भेंट अवश्य देते हैं। बारात के स्वागत या खानपान की विशेष रुचि हो तो बताइए। घर के आसपास पैलेस की सुविधा न रहने के कारण हम बारात का स्वागत घर पर ही करने की बात सोच रहे हैं। आपकी कुछ अभिलाषा हो तो कहें।

सभी सुन रहे थे। ध्रुव, कलावती तथा रामधन ने एक-दूसरे की ओर दबी नज़र से झांककर देखा तथा मन ही मन सभी की सहमति पाते हुए, रामधन मुस्कुराते हुए कहने लगे।

सेठरामधन : जनाब, ईश्वर के आर्शीवाद से हमारे घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। हमारी तो एक ही मांग है जिसे आप अवश्य पूरा कर दें।

चै. प्यारे लाल सुनते ही घबरा गए। क्या मांग पूरी करनी होगी ? यह सुनकर उनका रक्तचाप कम होने लगा। चेहरे की रौनक गायब हो गई। रंग फीका पड़ने लगा।

चै. प्यारे लाल रामधन जी, माँगना तो ईश्वर से चाहिए। वही इन्सान की माँग पूरी कर सकते हैं। बन्दा क्या माँग पूरी करेगा ? परन्तु फिर भी आप बताएं ?

रामधन : चै0 साहब, आप शायद बात अन्यथा ले गए। हमारी मांग है कि हमें सिर्फ संगीता ही चाहिए और कुछ नहीं। वह हमारे घर में बहू नहीं बेटी बनकर रहेगी। बाकी हम कुछ नहीं लेंगे। आप देंगे तब भी नहीं लेंगे। पैलेस का हमें कोई शौक नहीं। जैसा सम्भव हो, आप घर पर ही स्वागत करें। ध्रुव ने भी पिता की हाँ में हाँ मिलाते हुए वही बात दोहराई।

ध्रुव: पिता जी ठीक ही कह रहे हैं, हमें और कुछ भी नहीं चाहिए।

चै. प्यारे लाल : इस बड़प्पन के लिए आपका बहुत-बहुत आभार। आखिर सभ्य परिवार की यही तो पहचान होती है।

संगीता मन ही मन खुश थी सारी बातें स्पष्ट हो गईं। दोनों परिवार बहुत प्रसन्नचित् थे ध्रुव तथा संगीता की शादी का दिन 16 जनवरी 2022 तय कर दिया गया। खुशी इतनी कि कलावती ने पूरे मुहल्ले में पाँच किलो मोतीचूर के लड्डू बाँटने शुरू भी कर दिए। मेहमान अभी घर से निकले ही थे।

अगले दिन सुबह छ: बजे आँखें लाल किए ध्रुव घर पहुँचा कि माँ कलावती का चेहरा गुस्से में सुर्ख था। वह रात भर ध्रुव के घर आने का बेसब्री से इंतजार करती रही। दिसम्बर माह व जाड़े के दिन थे। एक माह पश्चात् उसकी शादी थी। रात भर गायब रहना माँ कलावती के लिए चिंता का सबब बन गया था।

मंगलेश ध्रुव की कम्पनी में ही क्लर्क के पद पर तैनात था। दोनों वर्षों पुराने दोस्त थे। पिछले कल मंगलेश की शादी थी। ध्रुव भी परिवार सहित आमंत्रित था। परिवार की तरफ से ध्रुव ही दोस्त की शादी में शरीक होने पहुँचा। मंगलेश की बरात में खूब भीड़ थी। ध्रुव भी दोस्तों संग नाच-गाने में मस्त रहा। दुल्हन मंगलेश के साथ ही कॉलेज में पढ़ी थी। बारात का स्वागत एक बड़े पैलेस में जोर- शोर से किया गया। खूब आवभगत की गई। तरह-तरह के व्यंजन परोसे गए। माँस-मदिरा भी खूब चली। आर्केस्टा वालों ने भी धमाल मचाई। वरमाला का दृश्य भी बहुत ही मनोरम था। उपहार के रूप में मंगलेश को एक बड़ी कार तथा सोने के अत्याधुनिक आभूषण मिले। इलेक्ट्रॉनिक सामान भी अनगिनत मिला। बेतहाशा अन्य सामान भी साथ ही मिला। ध्रुव यह सब उपहार देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। उसके मन में इच्छाएं घर करने लगीं। मुँह में पानी भर आने लगा। अवचेतन मन चेतन हो गया। वह मन ही मन विचार करने लगा कि जब ये लोग उपहार में गाड़ी तथा आभूषण दे सकते हैं तो संगीता का परिवार क्यों नहीं। समाज में मेरा भी मान हो जाएगा। गाड़ी कौन-सी नई बात है। संगीता से अवश्य बोल दूँगा। इसमें कौन सी बुराई है। वे अपनी बेटी को हो तो देंगे। विदेश में तो यह सारी बातें आम हैं। वे कौन सा दुनिया में कोई नया काम करेंगे।

ध्रुव की शादी के लिए दो दिन शेष थे। सभी तैयारियां जोरों पर थीं। रिश्तेदारों की आवाजाही शुरू थी। 16 जनवरी का सभी को बेसब्री से इंतजार था। शादी का दिन था। बैंडबाजा बजने लगा। मंगलगीत गाये जाने लगे। चारों ओर से घर सजाया गया था। बारात भी तैयार थी लेकिन ध्रुव के हृदयपटल पर उपहार में नई कार की चाह सहित अन्य विचारों का उमड़ना बन्द होने के बजाय और तेज़ होता गया। उसे विश्वास था कि माँग करना और संगीता के परिवार द्वारा मेरी इच्छापूर्ति करना मात्र एक ही इशारे में सब हो जाएगा। उसे दिन में ही सपने आने लगे। उसे सपने में एकमात्र मंगलेश की बड़ी कार तथा सोने के आभूषण ही दिखाई देते। वह मन ही मन उस कार की तुलना स्वयं को दहेज़ में मिलने वाली कार से करता व खुश हो जाता।

ध्रुव घोड़ी पर सवार हो गया। महिलाएं खूब नाच रही थीं। बरात में बच्चों की भरमार थी। रामधन ने सभी गांववासियों व रिश्तेदारों को शादी के लिए आमंत्रित किया। परिवार में नई पीढ़ी में पहली शादी थी। बरात गंतव्य तक पहुँची। संगीता के परिवार ने स्वागत में कोई कसर न छोड़ी। रामधन दोस्तों व रिश्तेदारों सहित बरात में आगे बढ़ते रहे। स्वागत के पश्चात् वरमाला का समय शुरू हो गया। ध्रुव के मंच पर पहुँचते ही संगीता भी सामने से धीरे-धीरे मंच की ओर बढ़ रही थी। डी.जे. पर धुन बजने लगी 'बहारों फूल बरसाओ, मेरा महबूब आया है, मेरा महबूब आया है।' वधू मंच पर पहुँचते ही सभी फोटोग्राफर एक दूसरे को दिशा-निर्देश देने लगे। सभी की नज़र वर-वधू के वरमाला कार्यक्रम पर थी। दोनों के हाथों में गेंदे के ताज़े फूलों की सुन्दर वरमाला थमा दी गई। इससे पहले कि संगीता वरमाला पहनाने की स्थिति में आ पाती, ध्रुव ने इशारा कर संगीता के कान में कुछ बात सुनने के लिए कहा। उसके हृदय पटल पर अंकित विचार तीव्र वेग से प्रस्फुटित होने लगे थे।

ध्रुव : संगीता, आजकल शादी में बड़ी गाड़ी उपहार रूप में देना तथा सोने के आभूषण भेंट करना तो आम बात है। हर कोई पढ़ा लिखा तो देता ही है। आपके पिता जी भी दे रहे हैं न? हाँ कहो। हाँ कह दो न। देनी ही पड़ेगी।

ध्रुव के शब्द कानों में पड़ते ही संगीता काँप उठी। उसे लगा मानो पैरों तले से जमीन खिसक गई हो। उसके संजोए सपने मानो हो गए हों। वह एक कदम पीछे हट गयी। इससे पहले ध्रुव कुछ समझ पाता, संगीता ऊँची आवाज में बोलने लगी।

संगीता : अगर आपको नई गाड़ी तथा सोने के आभूषण ही चाहिए, उसी से आपने शादी करनी है तो माफ कीजिए। मुझे यह रिश्ता मंजूर नहीं है। मैं ऐसे रिश्ते को ठोकर मारती हूँ। आप सभी यहाँ से जा सकते हैं।

ध्रुव : ' संगीता, आप नाराज हो गईं, यह तो आम बात है। इसमें नाराज होने की क्या बात ?'

रामधन व रिश्तेदार कुछ समझ पाते इससे पहले ही संगीता ने पास ही खड़े अपने पिता से आवेश में कहना शुरू किया। संगीता : पिता जी, इन्हें मुझ से शादी नहीं करनी एक नई बड़ी कार तथा सोने के आभूषणों से शादी करनी है। मुझे ऐसा रिश्ता स्वीकार नहीं। आज भी हमारे समाज में दहेज के लालची लोग विद्यमान हैं। पढ़े-लिखे हैं। मैं पूछती हूं कि ये दहेज के लोभी चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं जाते ?' लोग फुसफुसाना बन्द करते, उससे पहले ही संगीता मंच से नीचे उतरकर, कुछ कहते हुए अपने कमरे की ओर प्रस्थान करने लगी। ध्रुव वरमाला हाथ में पकड़े मंच पर ही दुविधाग्रस्त खड़ा था। इधर-उधर देख ही रहा था कि उसके पिता रामधन मंच पर पहुँच उस पर चिल्लाने लगे।

रामधन : तूने मेरी सारी इज्जत मिट्टी में मिला दी। यह तूने क्या कर दिया ? मेरे जीवन की सारी जमापूँजी को मिनटों में स्वाहा कर दिया। अगर तुझे नई गाड़ी ही चाहिए थी तो घर पर क्यों नहीं फूटा ? कार खरीदने में कौन सी दिक्कत थी। खरीद लेते। आभूषणों की कौन कमी है। तेरी यह नालायकी आने वाली पीढ़ियां याद रखेंगी। तुझ-सा बेवकूफ दुनिया में न होगा।

अभी भी लोग दुविधा में थे। संगीता से शादी अब ध्रुव के लिए किसी बड़े सपने से कम न थी। वह खड़ा रहा।

बारात बैरंग लिफाफे की तरह खाली हाथ लौटने के लिए खड़ी थी। बहुत से लोग व्यंजनों का स्वाद चखकर पहले ही लौट चुके थे। लोग द्वन्द्वग्रस्त थे। सारी बात किसी की समझ में आती, उससे पहले संगीता के पिता गुस्से में चिल्लाने लगे। उन्होंने ध्रुव व उसके परिवार को सबक सिखाने के लिए 100 नम्बर डायल कर पुलिस को सूचित कर दिया। ऐसे मामलों में पुलिस की चुस्ती दुरूस्ती सराहनीय होती है। पुलिस पंडाल में पहुँच चै. प्यारे लाल की बात सुन, ध्रुव से पूछताछ करने लगी। संगीता से भी पूछताछ हो चुकी थी। पुलिस ने सभी के बयान दर्ज कर लिए। संगीता के अखंड स्वाभिमान के आगे सभी के समझौते के प्रयास बौने साबित हुए।

चै. प्यारे लाल अपने साथ हुए धोखे तथा सामाजिक अपमान की बात कर रहे थे। स्प्ष्ट है समाज में परम्परानुसार अगर किसी बेटी का तय हुआ शादी का रिश्ता रद्द हो जाए तो लड़की व परिवार पर ही प्रश्नचिह्न लगाया जाता है परन्तु अब समय बदल चुका है। अच्छाई-बुराई की पहचान भली-भांति कर ली जाती है। पुलिस भी समझ चुकी थी। इसलिए ध्रुव तथा रामधन को पुलिस थाने में चलकर बयान देने के निर्देश मिले। पुलिस आरोपियों सहित लौटी ही थी कि बारात में आये गांव के प्रधान लीलाधर सारी घटना को भली-भांति देख व समझ चुके थे। संगीता व परिवार का अपमान उनके लिए असहनीय हो गया। संवेदनशील व्यक्ति थे। ऐसे कई मामलों को उन्होंने पंचायत स्तर पर हल करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्होंने संगीता के माता-पिता तथा रिश्तेदारों को उचित समझा। समस्या का हल करने का प्रस्ताव उनके मन में था। उन्होंने अपनी बात रखनी चाही। सभी उन्हें सुनने लगे।

लीलाधर: आज की यह घटना अत्यंत निंदनीय है। समाज व कानून इसे स्वीकार नहीं करता। एक तरफ बेटी संगीता का स्वाभिमानपूर्ण निर्णय दहेज़ के लालची लोगों लिए एक बड़ा सबक है परन्तु दूसरी तरफ वधू पक्ष के लिए यह घटना किसी मानसिक धक्के से कम नहीं। मैं नहीं चाहता कि बेटी संगीता या माता-पिता को समाज में किसी तरह का अपमान सहन करना पड़े। मेरा बेटा रजत सेना में कैप्टन के पद पर कार्यरत है। आजकल छुट्टी पर है और बारात में ही उपस्थित है। अगर संगीता तथा उसके माता-पिता सहमति दें तो हमें यह रिश्ता अपने बेटे कैप्टन रजत के लिए मंजूर है। अगर आपको भी यह रिश्ता स्वीकार है तो हम आज ही इसी रिश्ते के लग्न के समय अपने बेटे की शादी के लिए तैयार हैं।

'हमें कार वाली नहीं, संस्कार वाली लड़की चाहिए' जो हमें मिल गई। संगीता, माता-पिता तथा रिश्तेदार यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। घर बैठे बिठाए उन्हें एक योग्य वर मिल गया और वह भी उसी दिन व लग्न के लिए। कैप्टन रजत तथा संगीता ने भी शादी का यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। कुछ ही घण्टे पहले उन पर टूटने वाला दु:खों का पहाड़ अब समाप्त हो गया था। चै. प्यारे लाल का परिवार अब तनावमुक्त हो गया क्योंकि लीलाधर का परिवार लालची नहीं था। उनकी कोई

इच्छा न थी। वह एक राष्ट्रवादी, देशभक्त एवं स्वाभिमानी परिवार था। कैप्टन रजत भी सुन्दरता में संगीता से कम नहीं थे। ईमानदारी एवं पारिवारिक संस्कार उसकी बातों में स्पष्ट झलकते थे।

कैप्टन रजत : शादी एक पवित्र बन्धन है। दहेज़ के लालची लोगों के लिए इसकी कोई कीमत नहीं। कुछ लोगों की आवश्यकता कार है तथा कुछ लोगों की आवश्यकता संस्कार है। मुझे गर्व है कि आज का भारतीय समाज बदल चुका है। परन्तु कुछ लोगों की नीयत में अवश्य ही खोट है। मैं संगीता के निर्णय की प्रशंसा करता हूँ। दहेज़ के लालची लोगों को सबक मिलना चाहिए था।

कुछ ही समय के बाद कैप्टन रजत और संगीता पारम्परिक परिधान में सजकर बेहद सादा ढंग से वरमाला कार्यक्रम के लिए मंच पर उपस्थित थे। दोनों के परिवार खुशी से झूम उठे। कुछ ही क्षणों में वर-वधू पर पुष्प वर्षा होने लगी। हाथों में पुष्प माला लिए दोनों के चेहरों की चमक स्वाभाविक थी। सर्वप्रथम संगीता ने कैप्टन रजत के गले में वरमाला पहनाई और फिर रजत ने संगीता के गले में। तभी समाचार मिला कि शादी में दहेज़ स्वरूप कार व सोने के आभूषणों की माँग करने के आरोप में पुलिस ने ध्रुव को सलाखों के पीछे भेज दिया था।

शादी के लिए पहुँचे दूल्हे ध्रुव के गले में वरमाला तो नहीं, हाथ में हथकड़ी अवश्य लग गई थी। कैप्टन रजत व संगीता विवाहोपरांत परिवार में सूखपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे जबकि ध्रुव लिखे जाने तक जेल में कैदी नम्बर 420 के रूप में बन्द था।।

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केंद्र, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)
ई-मेल : sanju26971@gmail.com मो. - 8628955018, 9418297824

साक्षात्कार

लघुकथा लेखन के अविश्रांत पथिक : श्री कमलेश भारतीय

-नेतराम भारती

साक्षात्कार विधा की अपनी कसौटी है आज जितने हैं, आधुनिक हिन्दी लघुकथा साहित्य के शुरुआती दौर के अविशांत पथिक, समृद्ध लघुकथा साहित्य को समृद्ध करने वाले आ. श्री कमलेश भारतीय जी से।

नोट : कमलेश भारतीय जी आधुनिक हिंदी लघुकथा साहित्य के प्रारंभिक दौर के वरिष्ठ और चर्चित लघुकथाकार हैं। आप लघुकथा, कहानी, कविता और आलेख में अच्छा-खासा दखल रखते हैं। आप हरियाणा ग्रंथ अकादमी के भूतपूर्व वाइस चेयरमैन रहे हैं।

नेतराम भारती : लघुकथा विधा में आपकी विशेष रुचि कब और कैसे उत्पत्र हुई?

कमलेश भारतीय : लघुकथा में रुचि आठवें दशक की शुरुआत में सन् 1970 में ही हो गयी थी जब 'प्रयास' अनियतकालीन पत्रिका का प्रकाशन-संपादन शुरू किया। इसी के अंकों में मेरी पहली पहली लघुकथाएं-किसान, सरकार का दिन और सौदा आदि आई। प्रयास का दूसरा ही अंक लघुकथा विशेषांक था, जो संभवत: सबसे पहला लघुकथा विशेषांक या बहुत पहले विशेषांकों में एक है, जिसकी चर्चा सारिका की नयी पत्रिकाओं में भी हुई और यह विशेषांक चर्चा में आ गया। बाद में मैंने दस वर्ष सुपर ब्लेज (लखनऊ) मासिक पत्रिका का संपादन किया, लघुकथा विशेषांक भी दिया और फिर दैनिक ट्रिब्यून में उप संपादक रहते समय सात वर्ष कथा कहानी पन्ने का संपादन किया और मेरी रूचि निरंतर लघुकथा में बढ़ती ही गयी। कथा समय मासिक पत्रिका के संपादन में भी लघुकथाओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया ।

नेतराम भारती : लघुकथा, कहानी और उपन्यास के बीच क्या अंतर है, आपके दृष्टिकोण से?

कमलेश भारतीय : वैसे ये अंतर वाली बातें बहुत पीछे छूट चुकी हैं। उपन्यास बृहद जीवन कथा तो कहानी एक घटना, भाव का कथन और लघुकथा वामन के पांव जैसी! ज्यों नाविक के तीर, देखन में छोटे लगें, धाव करे गंभीर।

नेतराम भारती : एक लघुकथा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व आप किसे मानते हैं ?

कमलेश भारतीय : सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात कि आप कहना क्या चाहते हैं, उसका ट्रीटमेंट कैसा किया? कहने-सुनने में अच्छा पर ट्रीटमेंट में फेल तो क्या करेगी लघुकथा? संदेश क्या है? छोटे पैकेट में बड़ा धमाका चाहिए।

नेतराम भारती : आजकल देखने में आ रहा है कि लघुकथा की शब्द सीमा को लेकर पूर्व की भांति सीमांकन नहीं है बल्कि एक लचीलापन देखने में आ रहा है। अब आकार की अपेक्षा कच्य की संप्रेषणीयता पर अधिक बल है। कह सकते हैं कि जिस प्रकार एक नाटक में उसका रंगमंच निहित होता है उसी प्रकार एक लघुकथा में भी उसके कथ्य, उसके शिल्प में उसकी शब्द सीमा निहित रहती है। मैं छोटी बनाम लंबी लघुकथाओं की बात कर रहा हूँ। आप इसे किस रूप में देखते हैं ?

कमलेश भारतीय : लघुकथा का आकार जितना लघु हो सके, होना चाहिए, यही तो इसकी लोकप्रियता का आधार है। संवाद शैली में रंगमंच का आभास होता है और ऐसी लघुकथाओं का पाठ बहुत मजेदार और लोकप्रिय रहता है। छोटी बनाम लम्बी कोई लघुकथा का विभाजन सही नहीं। लघुकथा बस, लघुकथा है और होनी चाहिए ।

नेतराम भारती : क्या लघुकथा साहित्य में वह बात है कि वह एक जन आंदोलन बन जाए अथवा क्या वह समाज को बदल सकने में सक्षम है ?

कमलेश भारतीय : कोई विधा जनांदोलन नहीं बन सकती। निर्मल वर्मा का कहना सही है कि साहित्य क्रांति नहीं कर सकता बल्कि विचार बदल सकता है। वही काम साहित्य की हर विधा करती है। यह भ्रम है। साहित्य मानसिकता बदलता है, राजपाट नहीं बदलता।

नेतराम भारती : सर ! गुटबाजी और खेमेबाजी की बातें कोई दबे स्वर में तो कोई मुखर होकर आजकल कर रहा है मैं आपसे सीधे-सीधे पूछना चाहता हूं क्या वास्तव में आज लघु कथा में खेमे तन गए हैं?

कमलेश भारतीय : लघुकथा भी राजनीति की तरह गुटबाजी की बुरी तरह शिकार है, यह कहने में संकोच नहीं लेकिन मेरा कोई गुट नहीं, न मैं किसी के गुट हूँ। मैं लघुकथा के साथ हूँ, यही मेरा गुट है।

नेतराम भारती : वर्तमान लघुकथा में आप क्या बदलाव महसूस करते हैं ?

कमलेश भारतीय : बदलाव तो संसार का, प्रकृक्ति का नियम है और लघुकथा इससे अछूती नहीं। लघुकथा में नित नये विषय आ रहे हैं। अब तो थर्ड जेंडर पर भी लघुकथा संग्रह आ रहे हैं तो पुलिस पर भी। अब जो जैसे बदलाव कर सकते हैं, वे कर रहे हैं। ताजगी बनी रहती है, नयापन बना रहता है।

नेतराम भारती : आपको अपनी लघुकथाओं के लिए प्रेरणा कहाँ से मिलती है ?

कमलेश भारतीय : शायद सबको साहित्य रचने की प्रेरणा आसपास से ही मिलती है। मैं भी निरंतर आसपास से लघुकथाओं की भावभूमि पाता हूँ। कोई बात चुभ जाये या फिर किसी का व्यवहार अव्यावहारिक लगे तो लघुकथा लिखी ही जाती है। प्रेरणा समाज है।

नेतराम भारती : सर! एक प्रश्न और सिद्ध लघुकथाकारों को पढ़ना नए लघु कथाकारों के लिए कितना जरूरी है। जरूरी है भी या नहीं क्योंकि कुछ विद्वान कहते हैं कि यदि आप पुराने लेखकों को पढ़ते हैं तो आप उनके लेखन शैली से प्रभावित हो सकते हैं और आपके लेखन में उनकी शैली के प्रतिबिंब उभर सकता है जो आपकी मौलिकता को प्रभावित कर सकती है इस पर आपका क्या दृष्टिकोण है ?

कमलेश भारतीय : मेरी राय में पढ़ना चाहिए, मैंने पढ़ा है, पढ़ता रहता हूँ। बहुत प्रेरणा मिलती है। मंटो, जोगिंदरपाल, विष्णु प्रभाकर, कुछ विदेशी रचनाकार जैसे चेखव सबको पढ़ना अच्छा लगता है, सीखने को मिलता है, कहने का सलीका आता है। प्रभावित होकर न लिखिये, सीखिये। बस। नकल तो सब पकड़ लेंगे।

नेतराम भारती : क्या कोई विशेष शैली है जिसे आप अपनी लघुकथाओं में पसंद करते हैं ?

कमलेश भारतीय : संवाद शैली बहुत प्रिय है और मेरी अनेक लघुकथायें संवाद शैली में हैं।

नेतराम भारती : आपके अनुसार, एक अच्छी लघुकथा की विशेषताएं क्या होती हैं?

कमलेश भारतीय : अच्छी लघुकथा वह जो अपनी छाप, अपनी बात, अपना संदेश पाठक को देने में सफल रहे।

नेतराम भारती : लघुकथा लिखने की प्रक्रिया के दौरान आप किन चुनौतियों का सामना करते हैं ?

कमलेश भारतीय : चुनौती यह कि जो कहना चाहता हूँ, वह कहा गया या नहीं? यह कशमकश लगातार बदलाव करवाती है और जब तक संतुष्टि नहीं होती तब तक संशोधन और चुनौती जारी रहती है।

नेतराम भारती : आपकी स्वयं की पसंदीदा लघुकथाओं में से कुछ कौन-सी हैं और क्यों ?

कमलेश भारतीय : यह प्रश्न ? बहुत सही नहीं। लेखक को सभी रचनायें अच्छी लगती हैं जैसे मां को अपने बच्चे। फिर भी मैं सात ताले और चाबी, किसान, और मैं नाम लिख देता हूं, चौराहे का दीया, पुष्प की पीड़ा, मेरे अपने, आज का रांझा, खोया हुआ कुछ, पूछताछ, शॉर्टकट, जन्मदिन ऐसी अनेक लघुकथायें हैं, जो बहुत बार आई हैं और प्रिय जैसी हो गयीं हैं और भी हैं लेकिन एकदम से ये ध्यान में आ रही हैं।

नेतराम भारती : भविष्य में आप किस प्रकार की लघुकथाएं लिखने की योजना बना रहे हैं ?

कमलेश भारतीय : वही संवाद शैली और समाज व राजनीति पर लगातार चोट करतीं लघुकथायें।

नेतराम भारती : आपके पसंदीदा लघुकथाकार कौन-कौन हैं और क्यों?

कमलेश भारतीय : रमेश बतरा, मंटो, जोगिंदरपाल, चेखव, मोपांसा, विष्णु प्रभाकर, शंकर पुणतांबेकर आदि जिनकी रचना जहां मिले पढ़ जाता हूँ।

नेतराम भारती : आपके अनुसार लघुकथा का क्या भविष्य है ?

कमलेश भारतीय : भविष्य उज्ज्वल है। सारी बाधाएं पार कर चुकी लघुकथा।

नेतराम भारती : **अगर आपसे पूछा जाए कि उभरते हुए अथवा लघुकथा में उत्तरने की सोचने वाले लेखक को कुछ टिप्स या सुझाव दीजिए, तो एक नव-लघुकथाकार को आप क्या या क्या-क्या सुझाव देना चाहेंगे ?**

कमलेश भारतीय : वही, ज्यादा से ज्यादा पढ़िये और कम से कम, बहुत महत्त्वपूर्ण लिखिये। कोई सुझाव नहीं, सब महारथी ही आ रहे हैं। दूसरों से हटकर लिखिये, आगे बढ़िये, बढ़ते रहिये। शुभकामनाएं ।

नेतराम भारती : **सर! आज बहुतायत में लघुकथा सर्जन हो रहा है। बावजूद इसके, नए लघुकथाकार मित्र इसकी यात्रा, इसके उद्भव, इसके पड़ावों से अनभिज्ञ ही हैं। आपने प्रारंभ से अब तक लघुकथा की इस यात्रा को न केवल करीब से देखा ही बल्कि उसपर काफ़ी कुछ कहा और लिखा भी है। कैसे आँकते हैं आप इस यात्रा को ?**

कमलेश भारतीय : आठवें दशक से अब तक पचास वर्ष से ऊपर की लघुकथा की यात्रा का गवाह हूं। बहुत, रोमांच भरी रही यह यात्रा। पहले इसके नामकरण को लेकर खूब बवाल मचा। कोई अणु कथा, मिन्त्री कथा तो कोई व्यंग्य को ही इसका आधार बनाने पर तुले रहे लेकिन इन सब झंझावातों से बच निकल करकर यह आखिरकार लघुकथा के रूप में अपनी पहचान बना पाई। बहुत से बड़े रचनाकारों ने इसे फिलर, स्वाद की प्लेट या फिर रविवारीय लेखन तक कह कर नकारा लेकिन सब बाधाओं और बोल कुबोल सहती लघुकथा इस ऊंचे पायदान पर पहुंची है।

नेतराम भारती : **सर! लघुकथा आज तेजी से शिखरोन्मुख हो रही है। उसकी गति, उसके रूप, उसके संस्कार और उसके शिल्प से क्या आप संतुष्ट हैं ?**

कमलेश भारतीय : संतुष्ट होना नहीं चाहिए, संतोष जरूर है। शिखरोन्मुख अभी नहीं। अभी आप देखिये, कुछ बड़े समाचारपत्र इसे अब भी प्रकाशित नहीं कर रहे। उनके वार्षिक विशेषांक भी इसे अछूत ही मानते हैं। अभी लघुकथा को जोर का झटका धीरे से लगाना बाकी है।

फॉर्चून रेसीडेंसी,
907 राजनगर-गाजियाबाद-201017 (उ.प्र.)
मो.-9871579114

व्यंग्य

छाती पीट प्रदर्शन

-प्रोफेसर श्यामलाल कौशल

यूं तो सारी दुनिया में कहीं ना कहीं किसी ना किसी बात को लेकर प्रदर्शन होते रहे हैं और होते रहेंगे। अभी हाल ही में हांगकांग में भी लोगों द्वारा प्रदर्शन किए जाने की बात टीवी चैनलों पर देखने तथा समाचार पत्रों में पढ़ने को मिली। भारत में भी समय- समय पर प्रदर्शन होना एक आम बात हो गई है। दिल्ली में जंतर मंतर नाम के स्थान पर आए दिन किसी ना किसी बात को लेकर प्रदर्शन होते रहते हैं। जब कभी भी प्रदर्शन किया जाता है उसका कोई ना कोई उद्देश्य होता है। यूं तो प्रदर्शन सरकार या समाज कि किसी काम को समर्थन देने के लिए भी किया जाता है। लेकिन अगर देखा जाए तो प्रदर्शन का मतलब यह नहीं है। जो लोग यह राजनीतिक दल प्रदर्शन करते हैं उनका उद्देश्य अपनी मांगों को मनवाना, किसी मामले को लेकर विरोध करना, आतंकवाद की खतरनाक घटना घटित होने के बाद सरकार के द्वारा आवश्यक कार्रवाई न किए जाने तथा आतंकवादियों के खिलाफ रोष प्रकट करने के लिए प्रदर्शन किए जाते हैं। कुछ समय पहले निर्भया कांड को लेकर भी दिल्ली में प्रदर्शन पर प्रदर्शन होते रहे। अपराधियों को पकड़ने तथा उन्हें पकड़ कर फांसी की सजा दिलाने के लिए.... कैंडल मार्च.... नाम के प्रदर्शन भी किए गए जिनमें प्रदर्शनकारियों ने हाथ में मोमबत्ती लेकर प्रदर्शन किया ! और भी कई प्रकार के प्रदर्शन किए जाते हैं! जिस तरह गर्मी के मौसम में जब पानी की किल्लत हो जाती है, सार्वजनिक प्रणाली के द्वारा सप्लाई किया जाने वाला पानी ना केवल अनियमित तौर पर काम आता है बल्कि गंदा भी आता है तब प्रदर्शनकारी..... मटका फोड़.... दर्शन करते हैं जिसमें प्रदर्शन करने वाले लोग महत्वपूर्ण महत्वपूर्ण चौराहों पर मटकी फोड़ के फोन कर पानी की अपर्याप्त तथा गंदी आपूर्ति पर रोष प्रकट करते हैं। समय-समय पर विद्यार्थियों द्वारा फीसों में वृद्धि, शिक्षा संस्थाओं में आवश्यक सुविधाओं की कमी, प्रवक्ताओं अथवा प्रिंसिपल द्वारा दुर्गा दुर्व्यवहार किए जाने अथवा किसी विद्यार्थी को कॉलेज अधिकारियों द्वारा सस्पेंड किए जाने के खिलाफ सड़कों पर प्रदर्शन किए जाते हैं। कहना ना होगा कि कई बार राजनेताओं द्वारा अपनी ताकत का प्रदर्शन करने के लिए शहरों में प्रदर्शन किए जाते हैं। प्रदर्शन अथवा रैली समाप्त होने के बाद जब प्रदर्शनकारी वापस अपने घरों को जा रहे होते हैं तो कई बार कुछ दुकानों को या फिर खाने पीने वाली चीजों को बेचने वाली रेहड़ियों की लूटमार होती है। कई बार प्रदर्शनकारियों पर प्रशासन द्वारा पुलिस को कहकर उन पर पानी की बौछारें की जाती हैं, हल्का लाठीचार्ज किया जाता है, अगर प्रदर्शनकारी उद्दंडता तथा हिंसा पर उतारू हो जाए तो कई बार गोली चलाने तक की नौबत आ जाती है। इस प्रकार की बातें अलग-अलग समय पर अलग- अलग लोगों द्वारा प्रदर्शन किए जाने पर आम हो गई हैं। कई बार कुछ प्रदर्शनकारी कपड़े उतार कर केवल तहमत, पैजामा, पैंठ यानी कर निक्कर डालकर अर्थात नग्न अवस्था में प्रदर्शन करते हैं। प्रदर्शन करने का उद्देश्य संबंधित अधिकारियों पर अपनी मांगे मनवाने के लिए उनका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करना तथा उन पर दबाव डालना होता है। कई बार तो कुछ पश्चिमी देशों में महिलाएं भी निर्वस्त्र होकर किसी न किसी मामले को लेकर निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन करती हुई देखी जा सकती हैं जिन्हें पुलिस ऐसा करने की अनुमति नहीं देती और उन्हें तुरंत गिरफ्तार करके जेल भेज दिया जाता है।

कई बार कुछ लोगों द्वारा अपनी मांगे मनवाने के लिए तथा संबंधित अधिकारियों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए..... छात के पीट.... प्रदर्शन किए जाते हैं! इस प्रकार के प्रदर्शनों में लोग अपनी छाती पीट रहे होते हैं और तरह-तरह की प्रशासन के खिलाफ नारे लगा रहे होते हैं! बहुत बार यह नारे भड़काऊ होते हैं! कई बार तो नारों में असभ्य भाषा का भी प्रयोग किया जाता है जोकि लोकतंत्र में प्रदर्शन की स्वतंत्रता की भावना के बिल्कुल विपरीत होता है! कहना ना होगा किसी परिवार में कोई जवान मौत हो जाती है या देश का कोई बहुत बड़ा नेता स्वर्गवास हो जाता है तो लोग इस दुख को सहन नहीं कर सकते और फिर छाती पीट-पीटकर अपने दुख का प्रदर्शन करते हैं! पंजाबी भाषा में इसे.. सियापा ..... कहते हैं! ऐसी स्थिति में प्रदर्शनकारी अपने दोनों हाथों को अपनी छाती पर मारते हैं, अपने माथे पर मारते हैं और कई बार अपने जांघ स्थल पर मारते हैं.... जिसका मतलब अपने दुख की अभिव्यक्ति होता है! इस प्रकार के छाती पीट प्रदर्शन बहुत भड़काऊ होते हैं, कई बार छाती पीटते पीटते, या फिर अपने मुंह तथा जांघ पर हाथ मारते-मारते प्रदर्शनकारी जख्मी हो जाते हैं, कई बार उनके इन स्थानों पर खून भी आना शुरू हो जाता है! इस प्रकार का प्रदर्शन बेशक बहुत कम देखने को मिलता है, लेकिन इसका परिणाम दूरगामी होता है! कई बार इस प्रकार के प्रदर्शनों में समाज विरोधी तत्व शामिल होते हैं जिनका व्यवहार भड़काऊ तो होता ही है, कई बार समाज विरोधी तत्व जोकि प्रदर्शन में शामिल होते हैं, हिंसा पर उतारू हो जाते

हैं, सरकार को लाठी चार्ज करना पडता है या फिर गोली चलानी पड़ती है, कई बार तो मामला इतना गंभीर हो जाता है की दफा 144 लगानी पड़ती है या कई बार तो कर्फ्यू लगाने तक की नौबत आ जाती है !

बेशक प्रदर्शन अपनी मांगों को मनवाने का एक लोकतांत्रिक तरीका है! प्रदर्शनों के तहत भूख हड़ताल, धरना, जुलूस, नारेबाजी आदि की जा सकती है ताकि लोग सरकार तक अपनी बात पहुंचा सकें तथा अपनी मांगी मनवा सके! लेकिन इसके साथ साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए की प्रदर्शन का नेतृत्व करने वाला नेता यह सुनिश्चित करें कि प्रदर्शनों के दरमियान कोई भी गैरकानूनी अथवा असंवैधानिक कार्रवाई नहीं की जाएगी, उस इलाके की शांति तथा सुरक्षा को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा।

मकान नं. 975-बी
ग्रीन रोड, रोहतक- 124001 (हरियाणा)
मोबाइल - 9416359045

पुस्तक समीक्षा

जीवन यथार्थ का दस्तावेजः `जूठन'

--डॉ0 नरेश कुमार

दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, सन् 1950 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जनपद से जुड़े बरला नामक गांव में हुआ। यह एक दलित परिवार था, जो कि अत्यंत निचले और निम्न पायदान पर था। इनका बचपन काफी सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों में बीता। माता-पिता के स्नेह के अतिरिक्त सम्पूर्ण जीवन कष्टप्रद और संघर्षमयी रहा। बचपन से ही लेखक ने दलित जीवन की पीड़ा को झेला। प्रारम्भिक शिक्षा बरला से विकट परिस्थितियों में प्राप्त करते हुए शिक्षा के क्रम को निरन्तर शोषण तथा अर्थाभाव सहन करते हुए जारी रखा। इन्होंने तकनीकी शिक्षा जबलपुर व मुम्बई से ग्रहण की तथा विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए एम. ए. हिन्दी की परीक्षा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर से उत्तीर्ण की।

ओमप्रकाश वाल्मीकि बचपन से ही अध्ययनशील और चिंतक व्यक्ति रहे। साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया। सन् 1997 में प्रकाशित 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से ये विशेष रूप से चर्चा में आए। 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से लेखक ने दलित जीवन के यथार्थ को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। वास्तव में 'जूठन' आत्मकथा में इन्होंने भंगी होने के कारण जिस जिल्लत, भूख, जुल्म और नरक की जिन्दगी को झेला, उससे मनुष्य और समाज का साक्षात्कार करवाया है। 'जूठन' आत्मकथा के सन्दर्भ में 'डॉ. ललिता कौशल' का कहना है कि, 'जूठन' शीर्षक में वाल्मीकि की जाति-बिरादरी की पीड़ा, अपमान और गरीबी समाई हुई है। यह दिल दहला देने वाली एक लेखक की सच्ची कहानी है। यह आत्मकथा ब्राह्मणवादी वर्ण-धर्म व उसके संस्थागत रूप के पाखंडों में मौजूद अमानवीयता को उद्घाटित करती है। स्वयं लेखक 'जूठन' को अपने जीवन के अनुभवों, उतार-चढ़ाव और संघर्षों की कथा कहता है।' ' वास्तव में 'जूठन' में लेखक के जीवन की सच्चाई और ढोया हुआ दर्द है। लेखक ने बचपन से लेकर देहरादून आर्डिनेंस फैक्ट्री में अधिकारी बनने तक जिस दु:ख और पीड़ा को भोगा 'जूठन' आत्मकथा में वो तमाम सच्चाई छिपी हुई है। 17 नवम्बर, 2013 को वाल्मीकि जी की मृत्यु हो गई परन्तु दलित समाज और साहित्य को आन्दोलन का रूप देने में उनका योगदान हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। 'जूठन' वास्तव में किसी एक वाल्मीकि के जीवन का यथार्थ नहीं है, बल्कि ऐसे अनेक वाल्मीकि दलित होने का दंश आज भी झेल रहे हैं। प्रस्तुत आत्मकथा के माध्यम से लेखक ने समाज में दलितों के ऊपर हो रहे जुल्मों और अत्याचारों की वास्तविक तस्वीर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में ओमप्रकाश के साथ किस प्रकार अन्याय और अत्याचार हुआ उसी का वास्तविक दस्तावेज 'जूठन' में समाया हुआ है।

मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके सामाजिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय समाज सदा से वर्ण मनुष्य और जात-पात की व्यवस्था पर आधारित रहा है। भारतीय समाज में दलितों के साथ सदा से ही अमानुषिक व्यवहार होता रहा है। लेखक के जीवन की यात्रा ऐसे ग्रामीण परिवेश और वातावरण से शुरू होती है, जिसमें शायद कभी कोई जन्म नहीं लेना चाहेगा। लेखक के शब्दों में, 'जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गांव भर की औरतें, जवान लड़कियां, बड़ी-बूढ़ी यहां तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी- फरागत के लिए बैठ जाती थीं। तमाम शर्म - लिहाज छोड़कर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थीं। ..... चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सुअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता।..... उसी बगड़ में हमारा परिवार रहता था।.... घर में सभी कोई न कोई काम करते थे। फिर भी दो जून की रोटी ठीक ढंग से नहीं चल पाती थी। नाम लेकर पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े', बराबर या उम्र में छोटा है तो 'अबे चूहड़े के ' यही तरीका या सम्बोधन था। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छुना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ ज़रूरत की वस्तु प्रकार कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता और वर्ण व्यवस्था के बदबूदार परिवेश में लेखक का बचपन व्यतीत हुआ। ,

दलित समुदाय पर ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक जुल्म और अत्याचार किये जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि को बचपन से ही जातिगत विषमता के कारण तिरस्कार और अत्याचारों का सामना करना पड़ा। बरला गांव में मुसलमान त्यागी भी काफी अधिक थे। उनका

व्यवहार दलितों के प्रति अत्यंत घृणित था। वे उनके ऊपर तरह-तरह की फब्तियां किया करते थे। लेखक के स्वयं के शब्दों में, 'ऐसी फब्तियाँ जो बुझे तीर की तरह भीतर तक उतर जाती थी। ऐसा हमेशा होता था। साफ-सुथरे कपड़े पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लड़के कहते, 'अबे, चूहड़े का, नए कपड़े पहनकर आया है।' मैले-पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओ तो कहते, 'अबे चूहड़े के दूर हट, बदबू आ रही है।' इससे स्पष्ट होता है जाति का छोटापन लेखक को पल-पल छलता रहा। लेखक और उसके समुदाय के लोग इसी प्रकार अनेक बार त्यागियों और उच्च जाति के लोगों के तिरस्कार का शिकार हुए। मास्टर बृजपाल त्यागी के घर में घटी घटना स्वर्णों के उच्च संस्कारों की पोल खोल कर रख देती है। ओम प्रकाश अपने सहपाठी के साथ मास्टर बृजपाल के गांव गेहूँ लेने जाता है। दोनों का खूब आदर सत्कार किया जाता है। इसी दौरान वहां पर एक अन्य व्यक्ति आ जाता है। उस व्यक्ति ने बुजुर्ग व्यक्ति से दोनों के विषय में पूछताछ शुरू कर दी। बरला से आए हैं। सुनते ही सवाल पूछा कोण जात से है। इस पर ओम प्रकाश ने जवाब देते हुए कहा, 'चूहड़ा जात हैं। बुजुर्ग ने चारपाई के नीचे पड़ी लाठी उठाकर तड़ से मार दी, भिक्खूराम की पीठ पर। ..... बुजुर्ग के मुंह से अश्लील गालियों की बौछार होने लगी थी। .... कई लोगों की राय थी रस्सी से बांधकर दोनों को पेड़ से लटका दो।' इस प्रकार पता चलता है कि स्वर्ण समाज निम्न जाति के लोगों के साथ कैसा अमानवीय व्यवहार करता है।

दलितों से हर जगह अमानवीय और यातनामयी व्यवहार होता है। उच्च जाति के लोग दलितों से बेगार करवाने के बावजूद भी उचित व्यवहार नहीं करते। दलित बेचारे तो स्वर्ण लोगों की जूठन तक को भी तरसते हैं। सुखदेव सिंह त्यागी की बेटी के विवाह में वाल्मीकि की माँ जब काम करने के बाद खाना मांगती है, तो सुखदेव झूठी पतलों के टोकरे की ओर इशारा करते हुए कहता है, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है- ऊपर से जातकों (बच्चों) के लिए खाना मांग रही है। अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।' अत: दलितों ने अत्यंत क्रूर मानवीय व्यवहार को जीवन में झेला। वाल्मीकि से हर आदमी हर स्तर पर सिर्फ एक ही प्रश्न पूछता है, 'तू कोण जात का है।' अबे चूहड़े के दूर हट बदबू आ रही है।' इस प्रकार देखा जा सकता है कि छोटी जात के कारण कदम-कदम पर वाल्मीकि और उसके जैसे अन्य लोगों को जलील किया जाता है।

जाति का लेबल बड़ा ही भयानक होता है, जो मृत्यु पर्यन्त भी शायद उसका पीछा नहीं छोड़ता। जैसे ही ओमप्रकाश आर्डिनेंस फैक्ट्री देहरादून में प्रवेश पाता है तो पिताजी बहुत खुश होकर यही कहते थे चलो 'जात से तो पीछा छूटा' लेकिन वे शायद इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि जाति का ठप्पा ता उम्र पीछा नहीं छोड़ेगा। मुम्बई (अम्बरनाथ) के हॉस्टल में रहते समय ओमप्रकाश वाल्मीकि का कुलकर्णी परिवार से सम्पर्क हुआ। वाल्मीकि नाम के भ्रम के कारण कुलकर्णी की बेटी सविता वाल्मीकि से प्रेम करने लगी। जब वाल्मीकि ने सविता से अपनी जात के विषय में कहा, 'अच्छा यदि मैं एससी ? तो भी 'तुम एससी ? कैसे हो सकते हो ? उसने इठलाकर कहा। क्यों यदि हुआ तो ? ..... 'तुम 'तुम तो ब्राह्मण हो।' यह तुमसे किसने कहा ? 'बाबा ने', गलत कहा। मैं एससी ? हूँ' सविता गम्भीर हो गई थी।' उसकी आँखे छलछला आई। उसने रूआंसी होकर कहा, 'झूठ बोल रहे हो न' ? 'नहीं सवि यह सच है..... जो तुम्हें जान लेना चाहिए।' ..... वह चलते-चलते रूक गई थी। बोली 'घर आओ या न आओ लेकिन यदि यह सच है तो बाबा से मत कहना....।' ..... नहीं कहोगे वादा करो....।' ये आधुनिक युग के ब्राह्मण परिवारों की सोच है, जिसका शिकार ओमप्रकाश जैसे दलित जाति के लोग होते हैं।

वर्ण व्यवस्था की क्रूरता इतनी भयानक होती है कि मानव का मानव के प्रति व्यवहार तक बदल जाता है। बदलते व्यवहार की इसी यातना को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने महाराष्ट्र में झेला। ओमप्रकाश की कुरेशी नामक व्यक्ति से मित्रता थी, जो कि महाराष्ट्र पुलिस में सब-इंस्पेक्टर थे। एक दिन कुरेशी ने ओमप्रकाश को अपने कमांडेंट साहब से मिलाने की बात कही और साथ में यह भी कहा कि कमांडेंट साहब तुम्हारे ही इलाके से हैं। ओमप्रकाश कमांडेंट साहब से मिलने चले गए। स्वयं वाल्मीकि के शब्दों में 'कमांडेंट साहब गर्मजोशी से मिले थे। यह सुनकर खुश हुए कि मैं बरला का रहने वाला हूँ। अभी ठीक से बैठे भी नहीं थे कि उन्होंने कहना शुरू किया, 'बरला तो त्यागियों का गाँव है। आप किस जाति से हैं ?' मैंने जैसे ही अपनी जाति 'चूहड़ा' बताई, वे असहज हो गए थे। साथ ही बातचीत का सिलसिला भी थम गया। जैसे बात करने लायक कुछ बचा ही नहीं था।' इससे स्पष्ट होता है कि जातिगत विषमता के कारण मनुष्य का व्यवहार एक दम से परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था की पीड़ा वाल्मीकि द्वारा सन् 1980 में जयपुर से चन्द्रपुर लौटते हुए ट्रेन में झेली गई। ट्रेन में एक मंत्रालय के अधिकारी के परिवार से आत्मिक परिचय हो जाता है और बात सीधी जाति पर आ जाती है। जैसे ही वाल्मीकि द्वारा अपनी जाति भंगी बताई जाती है उसके बाद के माहौल के सन्दर्भ में स्वयं लेखक बताता है कि, 'सारा माहौल बिगड़ गया था। जैसे अचानक स्वादिष्ट व्यंजन में मक्खी गिर गई। .... माहौल बोझिल हो गया था। बहुत तकलीफदेह हो गई थी यात्रा।' इस प्रकार देखा जा सकता है कि जाति और वर्ण व्यवस्था मानवीय सम्बन्धों को छिन्न- भिन्न कर देती है।

शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य विकास करते हुए जीवन में उपलब्धियों को प्राप्त करता है। लेकिन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के माध्यम से दलित ओर अछूत जातियों के समाज को शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति से पूरी तरह दूर रखा गया। 'जूठन' आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने शिक्षा तन्त्र की नग्नता को उकेरते हुए इस पाखण्ड और यथार्थ का पर्दाफाश किया है। जूठन कृति में लेखक ने स्वर्ण समाज और शिक्षकों की घटिया मानसिकता पर प्रकाश डाला है।

अनेक समाज प्रतिष्ठित लोगों के सामने हाथ-पांव जोड़ने के पश्चात् वाल्मीकि का विद्यालय में प्रवेश होता है, परन्तु दलित समाज में जन्म लेने के कारण अभद्र व्यवहार निरन्तर वाल्मीकि की आत्मा को कटोचता रहता है। वाल्मीकि के शब्दों में, 'स्कूल में दूसरों से दूर बैठना पड़ता था, वह भी जमीन पर।..... त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी ।.... स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सजा देते थे। '10 स्कूल में प्रवेश पाने के पश्चात् कितनी घृणा और पीड़ा का सामना दलितों को करना पड़ता था।

शिक्षकों का व्यवहार दलित छात्रों के प्रति सदैव अपने व्यवसाय और पेशे के प्रतिकूल रहता है। वाल्मीकि ने विद्यालय में शिक्षकों के विपरीत व्यवहार को अनेक कष्ट सहन कर झेला। वाल्मीकि के स्वयं के शब्दों में 'अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ-बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे बाहियातपन करते थे। '11 इस प्रकार अध्यापकों द्वारा दी जाने वाली यातनाएँ दलित विद्यार्थियों को सहन करनी पड़ती हैं। शिक्षकों की ब्राह्मणवादी और सवर्ण मानसिकता के कारण दलितों के साथ शैक्षणिक संस्थानों में हेय और निदंनीय कार्य करवाये जाते हैं। ओमप्रकाश ने जब स्कूल में दाखिला लिया तो हेड मास्टर कलीराम का व्यवहार बड़ा ही घटिया था। उन्होंने ओमप्रकाश को अपने कमरे में बुलाया और पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा, 'ओमप्रकाश' ..'चूहड़े' का है? 'जी', फटाफट लग ठीक है वह सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसे सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा जा काम पे।''[12] इस प्रकार अनेक दिनों तक वाल्मीकि का शोषण किया जाता है परन्तु बावजूद इसके उसने शोषण को सहन करते और उसका विरोध करते हुए अपनी शिक्षा का क्रम जारी रखा।

शिक्षा के मन्दिरों में दलितों के साथ पढ़ाई के नाम पर पक्षपात और भेदभाव किया जाता रहा है। ओम प्रकाश के साथ भी ऐसा ही हुआ। जानबूझकर उसका प्रैक्टिकल तक नहीं करवाया जाता और मौखिक साक्षात्कार में भी उसे कम अंक लगाए जाते हैं, जिस कारण वह बारहवीं की कक्षा में फेल तक हो जाता है। लेखक के शब्दों में, 'कई महीने तक जब मैं प्रैक्टिकल नहीं कर पाया तो मुझे ऐसा महसूस होने लगा था जैसे जान-बूझकर ऐसा किया जा रहा है। एक रोज उसने मुझे सभी के सामने अपमानित भी किया था और प्रयोगशाला से बाहर कर दिया था। बारहवीं कक्षा में मैं प्रैक्टिकल नहीं कर पाया था, पूरे वर्ष। साक्षात्कार में भी मुझे कम अंक मिले थे, जबकि मैंने परीक्षक के सभी प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर दिये थे। जब परिणाम घोषित हुआ, मैं बारहवीं में फेल था।''[13] इस प्रकार अध्यापकों द्वारा वाल्मीकि के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया गया। जब ओमप्रकाश द्वारा देहरादून में दाखिला लिया गया, तो यहां पर भी उसे सवर्ण छात्रों की कुदृष्टि का शिकार होना पड़ा। ओमप्रकाश के शब्दों में, 'एक दिन अंग्रेजी की कक्षा से बाहर निकलते ही दूसरे सेक्शन के एक लड़के ने मुझे रोक लिया। ..... एक ने मेरी पैंट खींचते हुए कहा, किस टेलर से सिलवाई है? हमें भी उसका पता दे दो।''[14] इस प्रकार ओमप्रकाश के साथ अनुचित व्यवहार किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि कानूनी व्यवस्था होने के बावजूद भी दलितों और अछूतों के साथ शैक्षणिक स्तर पर अमानवीय व्यवहार किया गया।

भारतीय समाज में दलितों के साथ आर्थिक शोषण भी सदा से होता रहा है। सवर्ण समाज आर्थिक आधार पर सदैव दलितों और निम्न जाति के लोगों को दबाता और कुचलता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की गरीबी और उनके आर्थिक शोषण की दारुण व्यथा का चित्रण 'जूठन' के माध्यम से किया है। स्वर्णों के घरों तथा खेतों में काम करना, उनकी जूठन से पेट भरना, उनके मरे हुए जानवरों को उठाना जैसे घिनौने कार्य करने पर भी उनके शोषण का शिकार होना पड़ता था।

ओमप्रकाश और उसकी बिरादरी के अन्य लोग त्यागियों के यहां काम किया करते थे बदले में उन्हें थोड़ा बहुत अनाज दे दिया जाता था। वे उत्सवों के समय टोकरियों में त्यागियों के घरों से जूठन एकत्रित करके लाते थे। उन्हें उचित मेहनताना नहीं मिल पाता था। ओमप्रकाश के शब्दो में, दिन-रात मर-खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र 'जूठन'।' 15 इससे स्पष्ट है कि दलितों को जूठन तक के लिए भी मोहताज होना पड़ता था। दलित लोग अक्सर त्यागियों के घरों और खेतों में काम किया करते थे परन्तु बदले में नाममात्र अनाज ही दिया जाता था, जिससे उन्हें दाने-दाने को तरसना पड़ता था। ओमप्रकाश के शब्दों में, 'इन सब कामों के बदले मिलता था,

दो जानवर पीछे फसल के समय पांच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज दस मवेशीवाले घर से साल भर में 25 सेर (लगभग 12-13 किलो) अनाज, दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची-खुची रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी। कभी-कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी। '16 यानि मेहनत करने के पश्चात् सिर्फशोषण ही दलितों के हिस्से आता रहा।

सवर्ण जाति के लोग जूठन तक को देने के लिए भी दलितों का शोषण करते रहे हैं। सुखदेव सिंह की बेटी के शादी के अवसर पर वाल्मीकि के माता-पिता ने घर-आँगन से लेकर सभी काम किये जब सभी लोग खाना खाकर चले गए तो ओमप्रकाश की माँ ने अपने बच्चों के लिए चौधरी से खाने की फरियाद की इस पर सुखदेव त्यागी आक्रोश से कहता है, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है ले जा रही है..... ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।' 17 अत: समाज का सम्पन्न वर्ग सदा से ही दलितों और गरीबों का आर्थिक शोषण करता रहा है।

आर्थिक कष्टों के कारण मनुष्य द्वारा हीन समझे जाने वाले कार्यों को भी दलितों को करना पड़ता है। ओमप्रकाश के जीवन का अनुभव भी कुछ इस तरह का ही रहा। उसे मरे हुए जानवरों को उठाकर उनकी खाल तक उतारने का काम तक करना पड़ता है। उसे ऐसा कार्य करते हुए मानसिक यातना से गुजरना पड़ता है। वाल्मीकि अपनी व्यथा के विषय में बताते हैं, 'मैं जैसे स्वयं ही गहरे दल-दल में फंस रहा था जहां से मैं उबरना चाहता था, हालात मुझे उसी दल-दल में घसीट रहे थे। जिस यातना को मैंने भोगा है, आज भी उसके ज़ख्म मेरे मन पर ताजा हैं। '18 इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि ने जीवन में कितना आर्थिक संघर्ष किया।

गरीबी स्वयं एक अभिशाप है और इस पर दलित हो तो और ज्यादा मुसीबत। देहरादून में पढ़ाई करते समय वाल्मीकि के लिए सर्दियाँ काटनी मुश्किल हो जाती हैं। एक स्वेटर तक भी वाल्मीकि खरीद नहीं सकता था। वाल्मीकि के शब्दों में, ' देहरादून की पहली सर्दी मेरे लिए बहुत कष्टदायक रही थी। मेरे पास सर्दियों में पहनने के लिए कोई गर्म कपड़ा नहीं था। मैंने लकड़ी की टाल से तीस-चालीस रुपए जमा कर लिए थे। एक सफाई कर्मी से वह खाकी जर्सी खरीद ली पहले दिन जब मैं इसे पहन कॉलेज गया तो लड़के जमादार कहकर चिढ़ाने लगे थे।' 19 इस प्रकार वाल्मीकि द्वारा अनेक आर्थिक कष्ट झेले गए।

सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में भी सदा से ही दलितों का शोषण ही होता रहा है। वाल्मीकि ने जीवन में सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र की इस मानसिक यातना को झेला। वाल्मीकि पढ़ाई में श्रेष्ठ था और एक अच्छा कलाकार भी। परन्तु जातिगत विषमता के कारण हमेशा उसे दूर रखा जाता रहा। स्वयं वाल्मीकि के शब्दों में, 'मुझे सांस्कृतिक कार्यक्रमों, क्रियाकलापों से दूर रखा जाता था। ऐसे वक्त मैं सिर्फ किनारे खड़ा होकर दर्शक बना रहता था। स्कूल के वार्षिक उत्सव में जब नाटक आदि का पूर्वाभ्यास होता था, मेरी भी इच्छा होती थी कोई भूमिका मुझे भी मिले। लेकिन हमेशा दरवाजे के बाहर खड़ा रहना पड़ता था। '20 इस प्रकार दलितों को हमेशा से ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उत्सवों से दूर रखा गया।

आज व्यक्ति की पहचान उसके विचारों से नहीं बल्कि उसके उच्च कुल में जन्म लेने और सर्वसम्पन्न होने से की जाती है। वाल्मीकि एक अच्छे साहित्यकार और वक्ता के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे। एक दिन उनको एक कार्यक्रम में 'बौद्ध साहित्य एवं दर्शन' विषय पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता है। जैसे ही बोलने के लिए वाल्मीकि को माइक दिया जाता है, एक श्रोता बीच में ही बोल पड़ता है, 'वाल्मीकि बौद्ध दर्शन और साहित्य पर बोलेगा। शर्म नहीं आती। '2 इससे स्पष्ट होता है कि जातिगत विषमता के कारण व्यक्ति के उच्च विचारों का मूल्य समाप्त हो जाता है। दलित होने के कारण साहित्यकार भी जातिगत भेदभाव के चलते वाल्मीकि की रचनाओं को छापने की अपेक्षा वर्षो दबाकर रखते थे लेखक द्वारा 'जंगल की रानी' नामक कहानी सारिका पत्रिका में प्रकाशन हेतु भेजी जाती है परन्तु 10 वर्षों तक कहानी नहीं छप पाई। वाल्मीकि के शब्दों में, ' 1990 में कहानी की वे दोनों प्रतियाँ एक टंकित पत्र के साथ वापस आ गई कि हम आपकी कहानी अभी तक छाप नहीं पाए हैं, हाँ प्रतीक्षा का और हौंसला हो तो वापस भेज दें। यानी पूरे दस वर्ष प्रतीक्षा कराने के बाद और प्रतीक्षा ..... यह कैसा मजाक है। साहित्य के भीतर भी एक सत्ता है जो अंकुरित होते पौधे को कुचल देती है। इस प्रकार पता चलता है कि दलित वर्ग को हमेशा से ही शोषण का शिकार होना पड़ा है, चाहे वह जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो।

आधुनिक लोकतान्त्रिक ढांचा भी काफी हद तक दलितों के शोषण में लिप्त रहता है। प्रशासन भी दलितों को हमेशा दबाने और कुचलने का प्रयास करता रहा है। बरला गांव में जब श्रमिकों द्वारा अपने श्रम का मूल्य मांगा जाता है तो पुलिस लोगों से बर्बरतापूर्ण व्यवहार करती है। वाल्मीकि के शब्दों में, 'लोकतन्त्र की दुहाई देने वाले सरकारी मशीनरी का उपयोग नसों में दौड़ते हुए लहू को ठंडा करने के लिए करते हैं, जैसे हम इस देश के नागरिक ही नहीं हैं। हज़ारों साल से इसी तरह दबाया गया कमजोर बेबसों को कितनी

प्रतिभाएं छल और कपट का शिकार होकर मिट गई। कोई हिसाब नहीं। 23 इससे स्पष्ट पता चलता है कि प्रशासन भी सदा दलितों की आवाज़ को दबाने की कोशिश करता रहा है।

गुजरात में आरक्षण विरोधियों द्वारा दलितों पर अनेक जुल्म किये गये। प्रशासन मौन रह कर तमाशा देखता रहा। उल्टे दलित समुदाय के लोगों को दंडित और प्रताड़ित किया गया। वाल्मीकि के शब्दों में, 'ग्रामीण क्षेत्रों में आरक्षण विरोधियों ने बेइंतहा जुल्म ढाए थे। चारों ओर हिंसा का तांडव था। ..... सरकारी, अर्द्ध सरकारी कार्यालयों में दलित अधिकारियों, कर्मचारियों को प्रताड़ित किए जाने की घटनाएं बढ़ने लगीं। ..... शोषित संघ के पर्चे पर प्रशासन निष्क्रिय था। लेकिन दलितों का पर्चा वितरित होते ही प्रशासन सक्रिय हो गया था। दलित, प्रतिनिधियों को बुलाकर पूछताछ होने लगी थी। 24 इस प्रकार दलित वर्ग हमेशा से ही शासन-प्रशासन की गलत नीतियों और नियमों का शिकार होता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जीवन में सदा सघर्ष किया। वाल्मीकि और उसका समाज हमेशा शोषण और अनदेखी का शिकार हुआ परन्तु बावजूद इसके वाल्मीकि ने हार नहीं मानी। उन्होंने अम्बेदकर को पढ़ा और उनके विचारों का प्रचार-प्रसार किया। अम्बेडकर के कारण ही वाल्मीकि की चेतना जागृत होती है। तब वाल्मीकि की समझ में आता है कि, 'हमें एक लगातार संघर्ष और बदलाव तथा हमारे दिलों में बैचेनी पैदा करने वाली संघर्ष चेतना की ज़रुरत है, जो क्रान्तिकारी बदलाव लाए और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया का नेतृत्व करे। '24 अत: वाल्मीकि का मानना है कि यदि हमें शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति चाहिए तो हमें अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना पड़ेगा और अधिक से अधिक शिक्षित होना पड़ेगा, तभी कहीं जातिगत विषमता से मुक्ति मिल सकेगी अन्यथा नहीं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'जूठन' आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा उसके जैसे दलित लोगों के जीवन यथार्थ का दस्तावेज है। दलित का सदा दलन ही होता रहा है। लेखक 'जूठन' के माध्यम से स्पष्ट करना चाहता है कि व्यक्ति की पहचान एक मनुष्य के रूप में होनी चाहिए न कि जातिगत रूप में 'जूठन' आत्मकथा व्यक्ति को जीवन में संघर्ष, संगठित और शिक्षित होने का संदेश देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ. ललिता कौशल, हिन्दी की चर्चित दलित आत्मकथाएं, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, 2010, पृ. 54
2,. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 11-12
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 65-66
5. वही, पृ. 21
6 वही, पृ. 72
7. वही, पृ. 119 120
8. वही, पृ. 138-139
9. वही, पृ. 159
10. वही, पृ. 13
11. वही, पृ. 14
12. वही, पृ. 14-15
13. वही, पृ. 81 14 वही, पृ. 85
15. वही, पृ. 20
16. वही, पृ. 19
17. वही, पृ. 21 18 वही, पृ. 47
19. वही, पृ. 93-94
20. वही, पृ. 26
21. वही, पृ. 156
22. वही, पृ. 147
23. वही, पृ. 52
24. वही, पृ. 130-131

सहायक आचार्य (हिन्दी) हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
मोबाइल: 9736020860, ई मेल: naresh.tomar2011@gmail.com

मैं रामवंशी हूं

डॉ. रूपिका शर्मा

यह रूपात्मक एवं दृश्यमान जगत पंचभूतों से निर्मित है। पंचभूतों से निर्मित इस सृष्टि सृष्टि में मानव अन्य सभी जीवों और प्राणियों से भिन्न है क्योंकि चेतना के उन्नत स्तर की अभिव्यक्ति मानव समाज की सभ्यता और संस्कृति के माध्यम से हुई है। मानव चेतना के विकास एवं अभ्युत्थान का ये ऐतिहासिक क्रम चिरकाल से गतिमान है। मानव चेतना के विकास की इस यात्रा में भारतीय मनीषा का योगदान अतुलनीय है। आत्माभिमुख एवं आत्मदर्शी ऋषियों की इस भूमि पर वेद और उपनिषदों में निहित ज्ञान मानव चेतना का श्रेष्ठ एवं उच्चतम निदर्शन है। भाषा, साहित्य, ललित एवं हस्तकलाएँ, स्थापत्य एवं भवन निर्माण, योग एवं चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिष एवं नक्षत्र विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान एवं युद्ध कला इत्यादि विभिन्न विषयों पर चिन्तन मनन से एक व्यवस्थित, सुसंस्कृत और कल्याणकारी समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। वैदिक समाज में यज्ञ कर्म की अवधारणा मानव एवं प्राकृतिक के अन्योन्याश्रित एवं अभिन्न संबंध की गहन अनुभूति और विचारणा से उद्भूत है और वर्णाश्रम व्यवस्था मानव जीवन को प्रेयस से श्रेयस की और अभिमुख करने का उज्वल, सुसंगत तथा लोकहितकारी उपक्रम है। भारतीय समाज सदा वैदिक ज्ञान एवं अनुसंधान पर आधारित रहा है युग चाहे सतयुग रहा हो या फिर त्रेता या द्वापर। वेदों द्वारा प्रदत्त वेदांत जिससे भारतीय तत्त्वविज्ञान का भव्य भवन निर्मित हुआ किन्तु दुर्भाग्य एवं खेद का विषय है कि हजारों वर्ष के तप और साधना से अर्जित यह ज्ञान आज ना तो हमारे जीवन का आधार है और न ही इस तक पहुँच बनाने की हमारी कोई जिज्ञासा, क्योंकि आज हमारे जीवन के अर्थ और उद्देश्य के विषय में हमारी दृष्टि पर एक आरोपित आच्छादन है। इस नैरेटिव को इस तरह बुना गया है कि हम जीवन का अर्थ भौतिक सुखोपभोग, अर्थ प्राप्ति से संबंधित महत्वाकांक्षाओं की सिद्धि को ही अपने व्यक्तित्व और जीवन की सार्थकता की कसौटी मान लिया है। पुरुषार्थ चतुष्टय के मार्ग पर जीवन को गतिमान करने वाली भारतीय प्रज्ञा आज उपेक्षित और लापता है और अर्थ तथा काम में ही बहुमूल्य जीवन का होम कर देने वाले प्रकांड ज्ञानी हर सजग और संवेदनशील भारतीय चेतना का गला घोंट देने पर अमादा है, जैसे द्वापर से कंस और दुर्योधन और त्रेता में रावण। कलयुग में ऐसी चुनौतियां एक दो नहीं अपितु अनंत हैं।

'मैं रामवंशी हूँ' पुस्तक ऐसे ही चुनौतियों से व्युत्पन्न जिज्ञासाओं से उपजी एक ऐसी राह है जिस पर चलते हुए पाठक लेखक के साथ साथ अपनी जड़ों, अपनी मूल संस्कृति, जीवन मूल्यों, अपने इतिहास, अपने दर्शन, समाज की मूल संरचनाओं का साक्षात्कार करता है। राम अपने युग और समाज की चुनौतियों के भयावह हैं और बर्बर रूप का ऐसा सटीक उत्तर है जिसकी गूंज और छाप आज तक भारतीय चेतना में स्पंदित और अंकित है। किंतु सम-सामयिक युग में और इससे पहले की शताब्दियों में भी हमारे भीतर के रावण ने अलग-अलग परिस्थितियों, संकटों और प्रभावों के कारण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में राम की सत्ता को चुनौती दी है उसे अपमानित किया है उसे मिथक और अव्यवहारिक बताया। विगत सत्रह सौ वर्षों से तो स्थितियां और भी विकट हुई हैं, क्योंकि स्वाधीन होने के बाद भी हम स्वतंत्र नहीं हो पाए बल्कि वर्ष दर वर्ष हमने अपनी संस्कृति, ज्ञान, परंपरा और इतिहास को नकारने में उसे पिछड़ा कहकर ही उपलब्धि के ताज अपने सर पर सजाए हैं।

स्व: को नकारकर हम कुछ नहीं पा सकते' जिस संवेदनशील मानस में ऐसा भाव जागृत होता है वो अपनी खोज पर निकलता है। मैं रामवंशी हूँ, उसी खोज का दूसरा पड़ाव है जिसमें हम भारतीय चेतना के उच्चतम आदर्श को सामाजिक जीवन की कसौटी पर वाक् और व्यवहार में पूर्ण सफलता एवं सार्थकता से चरितार्थ होते हुए देखते हैं। राम का चरित उनका व्यवहार, उनकी वाणी एवं शब्द चयन, परिवार, समाज, राजनीति और धर्म के प्रति उनके स्पष्ट समझ और उसे साकार करने का उनका साहस हमें विस्मितही नहीं करता, अपितु अवाक् और निरुत्तर भी कर देता है। आनंद हमें और भी अभिभूत कर देता है जब हम देखते हैं कि राम का हर साहस उनके भय से नहीं, उनके प्रेम और त्याग से उद्भूत है।

इसे मानव स्वभाव की विसंगति कहें अथवा उसके मन की कुचाल या युक्ति कि जैसा वो हो नहीं सकता यदि वैसा कोई वास्तव मैं तो वे उसकी उपेक्षा करने या उसके निराधार बताते कोई न कोई कारण खोज लेना चाहता है। राम के चरित्र को मिथकया कल्पना कहना ऐसी ही युक्ति है उन सब के लिए जो राम नहीं होना चाहते या राम जैसे महापुरुषों को भारतीय चेतना से सदा के लिए पोंछ देना चाहते हैं। उन्हें राम पर राम की जन्मभूमि, राम की नगरी रामराज्य सभी पर संदेह है। ये रामकथा के सभी पात्र और घटनाओं को कपोल

कल्पना मानते हैं। वे इसे कवि प्रतिभा की उच्च स्तरीय कल्पना कहते हैं, भारत का अतुलनीय अद्वितीय अनुपम इतिहास अथवा अतीत नहीं। उनके लिए इतिहास लेखन के अपने पैमाने और कसौटियां है। जिन के औचित्य पर वे कोई प्रश्न उठाने के विषय में कभी। सोच भी नहीं सकते। लेकिन भारत की वैदिक सभ्यता और संस्कृति, भारतीय तत्वज्ञान जीवन दर्शन, भारत के पौराणिक साहित्य की मनमानी व्याख्या करना वे अपना अधिकार समझते हैं। यह सत्य है कि इस सबसे न तो राम को अंतर पड़ता है, ना राम के व्यक्तित्व में साकार हुए भारतीय चेतना के उच्चतम उत्कर्ष को किंतु हमारी युवा पीढ़ी ऐसे कुतर्क और षड्यंत्रकारी युक्तियों से अपनी गौरवशाली संस्कृति और ज्ञान परंपरा से वंचित होकर अज्ञान और पतन के मार्ग पर अग्रसर है। उन्हें भारतीय संस्कृति के आधारों से अवगत कराना और उनकी प्रमाणिकता को सतर्क समझाना हर उस भारतीय के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है जो अपने समक्ष इस संकट की व्यापकता और गहराई को अनुभव कर रहा है। मैं रामवंशी हूँ। ऐसा ही एक श्रेष्ठ प्रयास है जिसमें लेखक ने राम और उनकी कथा से संबंधित सभी पात्रों घटनाओं उस समय की भगोलिक स्थितियों राम की वनवास यात्रा के मार्ग में आने वाले सभी स्थानों, वनों, आश्रमों, वहाँ की भूगोलिक स्थिति, वहाँ पाई जाने वाली वनस्पति, पेड़, पौधे, पक्षियों, जड़ी-बूटियों उस समय प्रयोग में आने वाले अस्त्र-शस्त्रों के साथ- साथ वाल्मीकि वशिष्ठ, विश्वामित्र, राजा दशरथ राजाजनक तथ रावण की वंशावली का, अयोध्या नगरी की भूगौलिक स्थिति एवं उसके वैभव और महत्त्व का, त्रेता युग में लेह लद्दाख, वर्तमान ईरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान तक विस्तीर्ण भारत की भौगोलिक सीमाओं और वहाँ शासन करने वाले भारतीय राजाओं और उनके वंश का विस्तृत परिचय दिया है। वनवास के दौरान राम ने जिस मार्ग का अनुसरण करते हुए जिन वनों और आश्रमों में प्रवास किया। उनकी तात्कालिक और समसामयिक अवस्थिति का शास्त्र सम्मत साक्ष्य देने का श्रम भी लेखक में बहुत ही सुंदर ढंग से किया है। उन वनों और आश्रमों की वनस्पति वहाँ पाए जाने वाले पेड़, पौधों, फलों उन वनों में पाए जाने वाले पशु पक्षियों का साक्ष्य आधारित विवरण भी प्रस्तुत किया। उल्लेखनीय है कि यह साक्ष्य वेद पुराण अन्य शास्त्र ग्रंथों के आधार पर तार्किक रूप से प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है की राम और रामकथा कल्पना नहीं अपितु भारत का महान इतिहास है जिसे विशुद्ध भारतीय शैली में इस तरह से प्रस्तुत किया गया है कि ये इतिहास की उबाऊ पुस्तक नहीं अपितु लोकचित्त का कंठहार बनी।

'मैं रामवंशी हूँ' पुस्तक में लेखक ने रामकथा के प्रामाणिक विवेचन के साथ साथ सनातन संस्कृति में संस्कारों के महत्त्व को भी रेखांकित किया है अथवा यह कहना उचित है कि सम-सामयिक समय में भारतीय जन चेतना को संस्कारों के महत्त्व उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक उपयोगिता और संस्कार के मंत्रों में निहित वैज्ञानिक दृष्टि को उजागर करना भी लेखक का उद्देश्य है। कथा के आरंभ में वशिष्ठ आश्रम के लक्ष्मीनारायण मंदिर के गुरुदेव कथा के पात्र अजकुमार और अपराजिता के अनुरोध पर जीवन में संस्कारों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- 'जिस प्रकार, सोना व हीरा आदि को तपाकर तराशकर उसका मल हटाना आवश्यक होता है। उसी तरह आत्मा की निवास के लिए शरीर को उपयुक्त माध्यम बनाने के लिए संपूर्ण शरीर का संस्कार आवश्यक है। शास्त्र कहते हैं जन्मना जायते शूद्र-संस्कारात् द्विज उच्यते। जन्म से सभी शुद्ध पैदा होते हैं, संस्कारों से ही मनुष्य द्विज बनता है। संस्कारों द्वारा नवीन मानव होने की प्रक्रिया बालक का दूसरा जन्म है। संस्कार अंधविश्वास नहीं है जादू टोना और न केवल पुरोहित की कला। पर आधारित है, अपितु वे युक्तिपूर्ण है। संस्कारों के प्रति किसी न किसी गुप्त अर्थ मूल्य। विचार या भावना की भाषा। मुद्रा पदार्थ के रूप में अभिव्यक्त है उदार नाथ जल का उपयोग। प्राय: प्रत्येक संस्कार में बहुलता से किया जाता है। जलदाय इक अपवित्रता को धोता है। ऋग्वेद में 1.20 3.22 में ऋषि। मेधा तिथि का कान व कहते हैं। हे जल देवता। हम ये आज कोने अज्ञान वश, जो दुष्कृत्य किए हों, जानबूझकर किसी से द्रोह किया हो, सत्पुरुषों पर आक्रोश किया हो, यहाँ आचरण किया हो तथा इस प्रकार से हमारे जो भी दोष हो, उन सब को बहा कर दूर करें। लेखक के अनुसार संस्कारों। लेखक के अनुसार मंत्र का उच्चारण करना ही संस्कार नहीं है अपितु इन मंत्रों में जो सूचना व ज्ञान है उससे हमें उच्चारण करने के साथ साथ समझना भी है जिससे संस्कार करने के फल अर्थात् लाभ विदित हूँ। और स्मरण हो जाए, अग्निहोत्री के साथ वेदमंत्रों का उच्चारण करने से स्वर लहरियों का वायुमंडल में प्रसारण होता है, जिसका प्रभाव वायुमंडल और मानव पर होता है। संस्कारों के संदर्भ में ही लेखक ने यज्ञ की वैज्ञानिकता। और मानव जीवन पर्यावरण और सामाजिक संरचना पर उसके सकारात्मक प्रभाव को भी तर्कपूर्ण ढंग से समझाया है। इस लेखक का कथन है कि अग्निहोत्री के बिना कोई संस्कार नहीं हो सकता। अग्निहोत्री की वैज्ञानिकता को समझाने के लिए दो बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेव शिष्यों को समझाते हैं। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ नष्ट नहीं होता। बल्कि फैल जाता है। अर्थात घी आदि यज्ञ सामग्री पिघलकर परमाणुओं के रूप में वातावरण में फैल जाती है। अग्नि में डालें हुए पदार्थ का क्षेत्र विस्तार ही नहीं होता अपितु गुण भी बढ़ जाता है। अग्नि द्वारा सूक्ष्म हो जाने पर पदार्थ का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। उदारणार्थ सर्दी जुकाम में रोगी को युग लिप्टिस ऑयल की भाप देते हैं। शीशी में रखी यूकलिप्टस की बूंदों को जब उबलते पानी में डालते है तो ऑयल के सूक्ष्म कण का विस्तार होता है। और गुण भी बढ़ जाता है। पश्चिमी समाज में सिविलाइन्ड सोसायटी और भारत के संस्कारी समाज के अंतर को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि सिविलाइज्ड सोसायटी में कानून द्वारा व्यवस्था थोपी जाती है, जबकि संस्कारों द्वारा सहर्ष स्वीकार की जाती है। संस्कारी समाज आत्मनियंत्रण तरित होता है, जबकि सिविलाइन्ड

सोसायटी में बाही नियंत्रण होता है। एक प्रेम की व्यवस्था है और दूसरी डर की। पश्चिमी समाज केवल भौतिक और शारीरिक पक्ष को ही महत्त्व देता है, जबकि सनातन शरीर के साथ साथ मन, मस्तिष्क और विचार पर ध्यान केंद्रित करता है। अर्थात संस्कारों का लौकिक के साथ अलौकिक पक्ष भी है। आध्यात्मिकता सनातन की प्रमुख विशेषता है। संस्कारों के माध्यम से भी अध्यात्म साधना होती है। मानव चेतना अर्थात आत्मा के विकास में मन तथा शरीर के संस्कार। यहाँ परिष्कार के महत्त्व से अवगत करवाते हुए 16 संस्कारों गर्भाधान। पुंसवन। सीमन्तोन्नयन। जातकर्म नामकरण। निष्क्रमण। चूड़ा कर। अन्नप्राशन। कारण भेद। उपनयन। वेदारंभ समावर्तन। विवाह, वानप्रस्थ, आश्रम, संन्यास आश्रम, अंत्येष्टि संस्कार का आज, कुमार तथा अपराजिता रामवंशी तथा जन मज़ा की कथा के माध्यम से। यथेष्ट ने रोपण किया गया है। उल्लेखनीय है कि राम कथा का उल्लेख उदाहरण देते हुए राम और राम कथा के सभी चरित्रों के आचरण का। वैदिक संस्कारों के प्रमाणिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आज कुमार, अपराजिता, रामवंशी, जनकात्मजा, सौमित्र इत्यादि पात्र समकालीन होते हुए भी संस्कारवान चेतनाओं के रूप में चित्रित हुए हैं। जो जीवन में राम चरित्र के जीवन मूल्यों के मर्म को केवल समझते ही नहीं है, अपितु उन्हें अपने आचरण का मूर्ति करने का भरसक प्रयास करते हुए त्याग एवं बलिदान से भी पीछे नहीं हटते। मैं रामवंशी हूँ वस्तु तय। एक प्रयास है भारतीयों की प्रस्तुति चेतना को जागृत कर उन्हें उनके जीवन के अर्थ और उद्देश्य के प्रति जागरूक करने का ये कथा उद्घोष है कि प्रेमपूर्ण कर्म से ही व्यक्ति को निर्मोहिया और साहसी बनाता है। त्याग और बलिदान बिना प्रेम के संभव नहीं। यह प्रेम व्यक्ति से परिवार से समाज और राष्ट्र तथा राष्ट्र के पूरे विश्व व्याप्त होकर व्यक्ति के स्व और चेतना को विस्तार देता है। साथ ही साथ अनाचार, पाप जड़ता, अत्याचार का नाश करते हुए समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है। राम हमारे आदर्श हैं किंतु वह कल्पना या मिथक नहीं अपितु संस्कारवान भारतीय चेतना का उच्चतम आदर्श हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत सुख और लाभ की अपेक्षा सर्व के हित और कल्याण के लिए जीवन जीया। रामवंशी उन्हीं का वंशज है और हम सभी भी आवश्यकता है राम के साथ अपने संबंध के सूत्र को, विश्वसनीयता से समझने की, राम कृत्यों के मर्म को आत्मसात करते हुए, अपने भीतर के भय और स्वार्थ पर विजय पाकर। अपने योग और समाज की रावण वृद्धि को चुनौती देने के पूरे गर्व और आस्था के साथ यह कहने की कि हाँ, मैं रामवंशी हूँ।

सहायक प्रोफ़ेसर
कन्या महाविद्यालय,
जालंधर।

भारत की विरासत संस्था

कन्या महाविद्यालय, (स्वायत्तशासी)

विद्यालय मार्ग, जालन्धर।

Phone : 0181-2296605, 2296606

E-mail : kmvjalandhar@yahoo.com • Website : www.kmvjalandhar.ac.in